संपर्क भाषा भारती

वर्ष 1990 से प्रकाशित साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, जनवरी—2023, RNI-50756

वर्ष-32, अंक-387

60/-

नववर्ष 2023 की हार्दिक शुभकामनाएँ!

अपनी बात...

प्रिय पाठकगण,

नववर्ष 2023 की हार्दिक शुभकामनाएँ स्वीकार करें!

विगत दिनों फेसबुक पर एक सज्जन की पोस्ट पढ़ी जो कुछ इस प्रकार थी :

"इतवार, 18 दिसंबर की दोपहर प्रेस क्लब ऑफ़ इंडिया के सभागार में 'परिकथा' के सौवें अंक का लोकार्पण हुआ। हिन्दी लघुपत्रिका के इतिहास में 'पहल' और 'प्रगतिशील वसुधा' के बाद सौ अंक पूरे करने वाली 'परिकथा' एकमात्र पत्रिका है ।"

कुएं के मेंढक को कुआं ही महासागर प्रतीत होता है।

अन्यथा "हिन्दी लघुपत्रिका के इतिहास में 'पहल' और 'प्रगतिशील वसुधा' के बाद सौ अंक पूरे करने वाली 'परिकथा' एकमात्र पत्रिका है ।" इस प्रकार के वाक्य से बचा जा सकता था।

अंत में लिखते हैं "लघुपत्रिका आंदोलन के अतीत और वर्तमान में उसकी ज़रूरत पर कुछ बातें मैंने भी रखीं । कार्यक्रम की तस्वीरों के साथ-साथ सौवें अंक में प्रकाशित अपनी कविताएँ भी साझा कर रहा हूँ।"

हिन्दी पट्टी के ये महंत खुद को फणीश्वर समझ बैठते हैं जहां ये छप रहे होते हैं वह पत्रिकाएँ ऐतिहासिक होती हैं, अन्य गौण।

खैर, मेरा मानना है कि इसमें कुछ हद तक दोष हम जैसी पत्रिकाओं का भी जो अपना गाल नहीं बजातीं।

आजकल का युग गाल बजा-बजा कर अपना प्रचार करने का है। हम इस युग में बस आत्म-प्रचार से और अर्थ-दोहन से बचते रहे।

संपर्क भाषा भारती को वर्ष 1990 से अपने वेतन के पैसों से निकालते रहे।

एकाध बार वार्षिक सदस्य बना कर पत्रिका संचालित करने का प्रयास किया तो सरकारी डाक की वितरण की अनियमितता से परेशानी हुई। पत्रिका गंतव्य तक नहीं पहुंची तो कूरियर कर के भेजनी पड़ी।

या तो हम अपना धन लगा कर पत्रिका निकालते या फिर साल में एकाध अंक निकाल कर भव्य भोज-युक्त आयोजन करते। तब शायद पत्रिका के बारे में चर्चा होती।

पर हमने पत्रिका के प्रकाशन पर अधिक ध्यान दिया।
अब से यह अवश्य कर दिया है, पत्रिका का प्रकाशन वर्ष और अंक बड़े अक्षरों में आवरण पृष्ठ पर छापना शुरू कर दिया है।
खैर, 28 दिसंबर की शाम साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली के सभागार में लेखिका रेनू अंशुल (रेनू अग्रवाल) कहानियों की किताब 'पॉकेट में इश्क़' (कहानी संग्रह) का लोकार्पण संपन्न हुआ। जो प्रलेक मुंबई से प्रकाशित हुई है। कार्यक्रम की अध्यक्षता वरिष्ठ साहित्यकार मैत्रेयी पुष्पा को करनी थी लेकिन किसी कारणवश वो नहीं आ सकीं।
कार्यक्रम में मित्र वरिष्ठ कथाकार व आलोचक महेश दर्पण, लघुकथा विशेषज्ञ बलराम अग्रवाल, सुभाष अखिल, राजकमल से मुलाक़ात हुई। साहित्यकार अलका सिन्हा से भी मुलाकात हुई। किसी श्रोता ने लिखा है कि "संपर्क भाषा भारती के संपादक सुधेंदु ओझा जी का संबोधन लाजवाब रहा।"
एक बार पुनः, जाते हुए वर्ष 2022 को विनम्र प्रणाम और धन्यवाद कि उसने हमें ऐसा अवसर प्रदान किया कि हम नए वर्ष का उगता हुआ विहान देख सकें और अपनी ऊंचाइयों के क्षितिज को तय कर सकें।
आप सब के परिवार में ईश्वर आशुतोष! समृद्धि स्वास्थ्य का अक्षुण्ण भंडारण करें आपकी मनोकामनाओं को पूर्ण करें और नव-वर्ष 2023 आपकी उपलब्धियों को नए शिखर प्रदान करे, यही शुभ कामना है।
संपर्क भाषा भारती पत्रिका के सभी सहयोगी साहित्यकारों और पाठकों का विशेष आभार जिन्हों ने इसे अपने स्नेह से सिंचित रखा।
सादर,
सुधेन्दु ओझा

पत्रिका में प्रकाशित लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक, मुद्रक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

अनुक्रमणिका जनवरी —2023

क्रम सं:	शीर्षक :	लेखक :	पृष्ठ संख्या :
1	संपादकीय		2
2	बौद्धिक चेतना का विकास...	सोनम लववंशी	4-5
3	इतना बदलाव कैसे (लघुकथा)	विजय कुमार	5
4	शहीदे आज़म उधम सिंह	आकांक्षा यादव	6-9
5	अनुपम साहित्य को खँगालने का वक़्त	अरुण तिवारी	10-13
6	साँप (लघुकथा)	संजय कुमार सिंह	13
7	चंद्रकांत जी (कहानी)	किरण शुक्ला	14-15
8	कटहल	डॉ सरला सिंह स्निग्धा	16-17
9	कविता	शलिनी रस्तौगी	17
10	कविता	दिव्य शर्मा	17
11	हौसला (कहानी)	पद्मा अग्रवाल	18
12	राष्ट्रपति की वेदना	अरुण तिवारी	19-22
13	लोक परंपरा में फाल्गुन	डॉ राम शंकर भारती	23-30
14	ताई की छड़ी (कहानी)	विनोद क्वात्रा	31-32
15	आदमी का काम (लघुकथा)	संजय कुमार सिंह	32
16	कविता	संदीप मिश्र 'सरस'	33
17	कविता	डा. केवलकृष्ण पाठक	33
18	कविता	डॉ शरद नारायण खरे	33
19	कविता	अशोक दर्द	34
20	कविता	गिरेन्द्र सिंह भदौरिया 'प्राण'	34
21	हनीमून (लघुकथा)	रामानुज अनुज	35
22	हाई हील्स	विद्या त्रिपाठी	36
23	समाज और राष्ट्र के कर्णधार हैं युवा	कृष्ण कुमार यादव	37-41
24	कविता	विकास कुमार तिवारी	41
25	अपनी-अपनी ज़िंदगी (कहानी)	श्यामल बिहारी महतो	42-45
26	सही मूल्यांकन (लघुकथा)	विजय कुमार	45
27	नज़ीर बनारसी यादों के आईने में	मोहम्मद सगीर	46
28	कविता	शिवानंद सिंह सहयोगी	47
29	काली (लघुकथा)	अरुण धर्मावत	47
30	ग़ज़लें	आशा पाण्डेय ओझा	48
31	कविता	तृप्ति मिश्र	49
32	कविता	केशव शरण	49
33	कविता	राजेंद्र ओझा	49

सोनम लववंशी

बौद्धिक चेतना का विकास और बढ़ती अंधविश्वास की खाई

एक तरफ़ पांच ट्रिलियन अर्थव्यवस्था वाला देश बनने का सपना संजोए हमारी व्यवस्था आगे बढ़ रही है। दूसरी तरफ कुछ ऐसे पहलू भी हैं। जो कई सवाल खड़े करते हैं कि आख़िर हम और हमारा समाज किस दिशा में जा रहा है! शिक्षा के विस्तार के साथ समाज की सोच में परिवर्तन आना स्वाभाविक है, लेकिन इक्कीसवीं सदी के भारत में अंधविश्वास की बढ़ती घटनाएं हमारे समाज और सरकार दोनों की मनोस्थिति और उनकी कार्यप्रणाली पर सवालिया निशान खड़े करती हैं! बीते दिनों उदयपुर में एक ही परिवार के 6 सदस्य अंधविश्वास के चलते अपनी जान से हाथ धो बैठे। ऐसे में यह कितना भयानक मंजर रहा होगा! जब अपने ही परिवार के सदस्यों की बलि चढ़ा दी गयी! लेकिन अंधविश्वास है ही ऐसा कि इसके फेर में फंसने के बाद व्यक्ति अपनी बुद्धि और विवेक सभी खो बैठता है। दुर्भाग्य देखिए कि उदयपुर की घटना में चार मासूम बच्चें भी अंधविश्वास की बलिबेदी पर चढ़ गए। जिन्हें अंधविश्वास के बारे में तो नहीं पता था, लेकिन अपनों के प्रति विश्वास ने ही उनकी जान ले ली।

आये दिन देश में जादू टोने के चक्कर में लोग अपनों की बलि चढ़ा रहे हैं। ऐसे में सवाल यही है कि आज की आधुनिक होती युवा पीढ़ी आख़िर तंत्र मंत्र के चुंगल से कब आज़ाद होगी, क्योंकि एक हमारा संविधान है। जिसके अनुच्छेद 51-ए (एच) के तहत मानवीयता, वैज्ञानिक चेतना और तार्किक सोच को बढ़ावा देने के लिए सरकार और समाज की जिम्मेदारी तय की गई है। लेकिन अवाम संविधान की जयकार करके ही ख़ुश हो जाती है और रहनुमाओं को फ़िक्र कहाँ किसी की! फ़िर कहीं डायन बताकर लोगों को मार दिया जाना, कहीं आस्था के नाम पर अपनों की बलि चढ़ा दिया जाना कोई अचंभित करने वाली बात समझ नहीं आती। ऐसे में अगर भारत को सचमुच का महाशक्ति बनते देखना रहनुमाओं का सपना है। फ़िर वैज्ञानिक चेतना का प्रचार-प्रसार करना होगा! धर्म आस्था का विषय है। वह होना भी चाहिए, लेकिन अगर वही धर्म, समाज को अंधविश्वास की चौखट की तरफ़ ले जाएं फ़िर समाज को सही दिशा देने का काम सतही स्तर से होना चाहिए! हम देखें तो मंगल और चांद व्यक्ति की जद में सिमटकर रह गए हैं, लेकिन मानव आज भी अंधविश्वास के गहरे गर्त से बाहर नहीं निकल पाया है और ऐसी घटनाओं की संख्या तेजी से बढ़ती जा रही है।

इसी अक्टूबर महीने की बात है। जब छत्तीसगढ़ में एक व्यक्ति को झाड़ फूंक के बहाने गर्म चिमटे से बीस से तीस जगह जला दिया गया और आखिरकार उसकी मौत हो गई। अंधविश्वास में ऐसी ही मौतों के अनगिनत घटनाक्रम हैं। जो सुर्खियां तो बनते हैं, लेकिन इनसे सीख लेने को जैसे हमारा समाज और सरकारी तंत्र तैयार नहीं। तभी तो एक आंकड़े के मुताबिक साल 2000 से 2016 तक 2,500 लोग जादू टोने का शिकार होकर अपनी ज़िंदगी से हाथ धो बैठे। गौर करने वाली बात तो यह है कि इसमें सबसे ज्यादा मौत मासूम बच्चों की हुई। अब इन बच्चों का कसूर सिर्फ़ इतना ही हो सकता है कि ये विरोध करने की स्थिति में नहीं और अंधविश्वास क्या होता है।

- *भारत में अंधविश्वास की बढ़ती घटनाएं हमारे समाज और सरकार दोनों की मनोस्थिति और उनकी कार्यप्रणाली पर सवालिया निशान खड़े करती हैं! बीते दिनों उदयपुर में एक ही परिवार के 6 सदस्य अंधविश्वास के चलते अपनी जान से हाथ धो बैठे। ऐसे में यह कितना भयानक मंजर रहा होगा! जब अपने ही परिवार के सदस्यों की बलि चढ़ा दी गयी! लेकिन अंधविश्वास है ही ऐसा कि इसके फेर में फंसने के बाद व्यक्ति अपनी बुद्धि और विवेक सभी खो बैठता है।*

इन्हें मालूम नहीं, लेकिन जिन लोगों ने इन बच्चों को मौत के मुँह में जाने दिया। सबसे बड़े गुनहगार वही हुए, विडंबना देखिए ऐसी घटनाओं में उनके अपने करीबी शामिल रहे। भारत में अंधविश्वास को लेकर कोई कठोर कानून नहीं होना भी इसकी एक बड़ी वज़ह है। अपर्याप्त कानून, अज्ञानता और निरक्षरता के चलते भारत में अंधविश्वासों के खिलाफ शायद ही कोई लड़ाई लड़ी गई है और यही कारण है कि चांद और मंगल पर पहुँचने की बात जिस कालखंड में हो रही। उस दौरान ऐसी घटनाएं समाज को कलंकित करने का काम कर रही है।

टी एस इलियट नामक दार्शनिक ने कहा है कि धार्मिक विश्वास पर सवाल नहीं उठाया जा सकेगा या उसकी आलोचना नहीं की जा सकेगी, तो उसका रूढ़ि और अंधविश्वास में तब्दील होना तय है। ऐसे में सिर्फ हमें साक्षरता दर में इज़ाफ़े पर वर्तमान समय में पीठ थपथपाने से बाज़ आना होगा और ऐसी व्यवस्था बननी जरूरी है, जो वैज्ञानिक चेतना को अंतिम जन तक पहुचाएं। जिससे यह समझ विकसित करने में आसानी हो कि धर्म की दृष्टि से क्या सही और क्या रूढ़ि या अंधविश्वास है! वरना अंधविश्वास की खाई बढ़ती चली जाएगी और साथ ही हमारा देश भी अंधविश्वास के कारण कमज़ोर पड़ जाएगा।

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

इतना बदलाव कैसे

लघुकथा : विजय कुमार

राजू और दिनेश स्कूटर से कहीं जा रहे थे कि अचानक आगे से एक कार उनके ठीक सामने आ कर रुक गयी। दोनों ने एकदम से ब्रेक न लगाए होते तो अवश्य ही टक्कर हो जाती। राजू ने एक भद्दी-सी गाली निकाली, और गुस्से में स्कूटर से उतरकर कार वाले की तरफ कदम बढ़ाने ही लगा था, कि दिनेश ने उसे रोक दिया, "छोड़ न यार, हो जाता है कभी-कभी। अब सड़क पर चलेंगे तो इतना तो चलता ही रहेगा।"

"यार सीधी टक्कर हो जानी थी अभी। साले के आंखें नहीं हैं क्या? चलानी नहीं आती तो घर से निकलते ही क्यों हैं?" राजू ने फिर एक भद्दी-सी गाली दे दी।

दिनेश ने उसे चुप कराते हुए कहा, "चल रहने दे न, जाने दे। अब इतनी बड़ी गाड़ी को रास्ता भी तो चाहिए होता है उतना। यह तो मोड़ भी ऐसा है कि पता ही नहीं चलता कि आगे से कौन आ रहा है। गलती से हो गया", दिनेश ने कार वाले को जाने का इशारा करते हुए राजू से कहा, "लिहाज किया कर कार वालों का...।"

राजू हैरानी से दिनेश को देख रहा था, और सोच रहा था, 'यह वही दिनेश है, जो अगर कोई जरा-सा भी उसको या उसके स्कूटर-मोटरसाइकिल को छू भी जाता था, तो कार वाले से पूरी गाली-गलौच करता था, और मरने-मारने पर उतारू हो जाता था। फिर अब ऐसा क्या हो गया?'

दिनेश ने उसे स्कूटर पर बैठने का इशारा करते हुए कहा, "चल बैठ, समझ गया कि तू क्या सोच रहा है। अब अपने पास भी कार है यार, इसलिए...। थोड़ी इज्जत कर लिया कर कार वालों की, समझा।"

'तभी मैं कहूं कि इतना बदलाव कैसे?...।' राजू ने अपना सिर हिला दिया।

आज़ादी का अमृत महोत्सव और शहीद-ए-आज़म उधम सिंह

आकांक्षा यादव

स्वतंत्रता व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। आजादी का अर्थ सिर्फ राजनैतिक आजादी नहीं अपितु यह एक विस्तृत अवधारणा है, जिसमें व्यक्ति से लेकर राष्ट्र का हित व उसकी परम्परायें छुपी हुई हैं। कभी सोने की चिड़िया कहे जाने वाले भारत राष्ट्र को भी पराधीनता के दौर से गुजरना पड़ा। पर पराधीनता का यह जाल लम्बे समय तक हमें बाँध नहीं पाया और राष्ट्रभक्तों की बदौलत हम पुनः स्वतंत्र हो गये। स्वतंत्रता रूपी यह क्रान्ति करवटें लेती हुयी लोकचेतना की उत्ताल तरंगों से आप्लावित है। यह आजादी हमें यूँ ही नहीं प्राप्त हुई वरन् इसके पीछे शहादत का इतिहास है। लाल-बाल-पाल ने इस संग्राम को एक पहचान दी तो महात्मा गाँधी ने इसे अपूर्व विस्तार दिया। एक तरफ सत्याग्रह की लाठी और दूसरी तरफ सरदार भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, राम प्रसाद बिस्मिल व उधम सिंह जैसे क्रान्तिकारियों द्वारा पराधीनता के खिलाफ दिया गया इन्कलाब का अमोघ अस्त्र अंग्रेजों की हिंसा पर भारी पड़ी और अन्ततः 15 अगस्त 1947 के सूर्योदय ने अपनी कोमल रश्मियों से एक नये स्वाधीन भारत का स्वागत किया और 26 जनवरी 1950 को हम गणतंत्र राष्ट्र बने।

भारत के स्वतंत्रता सेनानियों में क्रान्तिकारी उधम सिंह (26 दिसम्बर 1899 - 31 जुलाई 1940) का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। उन्होंने जलियांवाला बाग कांड के समय पंजाब के गर्वनर जनरल रहे माइकल ओ' ड्वायर को लन्दन में जाकर गोली मारी थी। उधम सिंह का जन्म 26 दिसम्बर 1899 को पंजाब प्रांत के संगरूर जिले के सुनाम गाँव में एक सिख परिवार में हुआ था। सन 1901 में

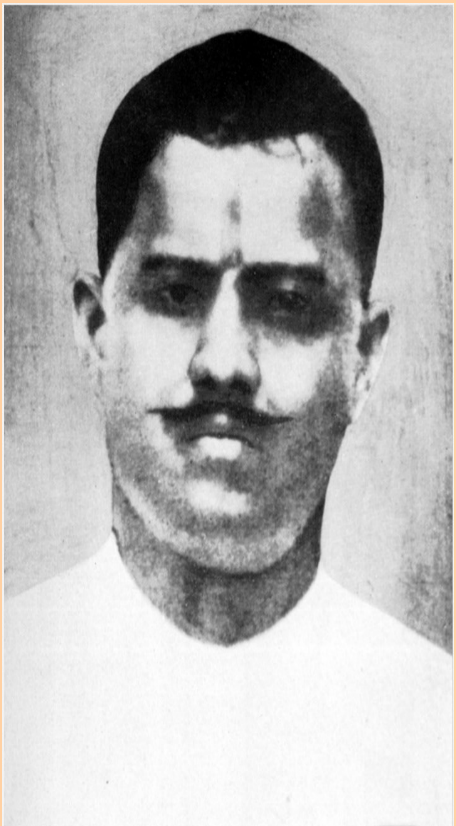

उधमसिंह की माता और 1907 में उनके पिता का निधन हो गया। इस घटना के चलते उन्हें अपने बड़े भाई के साथ अमृतसर के एक अनाथालय में शरण लेनी पड़ी। उधमसिंह के बचपन का नाम शेर सिंह और उनके भाई का नाम मुक्तासिंह था, जिन्हें अनाथालय में क्रमश: उधमसिंह और साधुसिंह के रूप में नए नाम मिले। उधम सिंह का बचपन काफी संघर्षों और अभावों के बीच गुजरा। दुर्भाग्यवश, अनाथालय में ही 1917 में उनके बड़े भाई का भी देहांत हो गया। उधम सिंह इसके बाद पूर्णतया एकाकी और अनाथ हो गए, परन्तु संघर्षों की तपन ने उन्हें और भी मजबूत बनाया। 1918 में उधम सिंह ने मैट्रिक एग्जाम पास किया और 1919 में उन्होंने अनाथालय छोड़ दिया। उधमसिंह देश में सर्वधर्म समभाव में विश्वास रखते थे और इसीलिए उन्होंने अपना नाम बदलकर 'राम मोहम्मद सिंह आजाद' रख लिया था जो भारत के तीन प्रमुख धर्मों का प्रतीक है। {राम-हिंदू, मोहम्मद-मुस्लिम, सिंह-सिख}

वर्ष 1919 का बैसाखी का दिन भारतीय इतिहास में एक क्रूर अध्याय लेकर आया। 13 अप्रैल, 1919 को पंजाब के अमृतसर में हजारों की तादाद में लोग एक पार्क में जमा हुए थे। रॉलेट एक्ट के तहत कांग्रेस के सत्यपाल और सैफुद्दीन किचलू को अंग्रेजों ने गिरफ़्तार कर लिया था। लोग वहां दोनों की गिरफ्तारी के खिलाफ शांति से प्रदर्शन कर रहे थे। तभी जनरल डायर अपनी फौज के साथ वहां आ धमका और पूरे बाग को घेर

लिया। उसने न तो प्रदर्शनकारियों को जाने के लिए कहा और न ही कोई चेतावनी दी। डायर ने बस एक काम किया। अपनी फौज को फायरिंग करने का ऑर्डर दिया। फिर जो नरसंहार शुरू हुआ वह इतिहास में काला अध्याय बन गया। अंग्रेजों ने उन मासूम लोगों पर दनादन गोलियां चलाईं और उस फायरिंग में बहुत लोगों की जानें गईं। बाग का इकलौता निकासी द्वार अंग्रेजों ने बंद कर रखा था। कुछ लोग बचने के लिए पार्क की दीवार पर चढ़ने लगे तो कुछ जान बचाने के लिए कुएं में कूद गए। इस जालियाँवाला बाग नरसंहार ने ब्रिटिश अत्याचार की हदें पार कर दी। उधमसिंह इस घटना को देखकर विचलित हो उठे। उनके मनोमस्तिष्क में चारों तरफ बिखरी पड़ी लाशों और उसके चलते अनाथ हुए तमाम बच्चों का दर्द चीत्कार कर उठा। उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उनके सामने ही भारत माता के सीने को छलनी कर दिया और वे बस तिलमिला कर रह गए। बस फिर क्या था, उसी क्षण उधम सिंह ने जलियाँवाला बाग की मिट्टी हाथ में लेकर जनरल डायर और तत्कालीन पंजाब के गर्वनर माइकल ओ' ड्वायर को सबक सिखाने की प्रतिज्ञा ले ली और अपनी जिंदगी आजादी आजादी की जंग

DAILY MIRROR, Thursday, March 14, 1940.

Daily Mirror MAR '14

No. 11,315 ONE PENNY

Registered at the G.P.O. as a Newspaper.

ASSASSIN SHOOTS MINISTER, KILLS KNIGHT

SIR MICHAEL O'DWYER, AGED SEVENTY-FIVE, GOVERNOR OF THE PUNJAB DURING THE AMRITSAR RIOTS IN 1919, WAS SHOT DEAD BY AN INDIAN GUNMAN AT A CROWDED MEETING IN CAXTON HALL, WESTMINSTER, YESTERDAY.

The gunman fired first at Lord Zetland, Secretary of State for India, and slightly wounded him. Then, as they rose to reach him he turned his gun, shot and wounded Lord Lamington, aged seventy-nine, ex- Governor of Bombay, and Sir Louis Dane, aged eighty-four, another Punjab ex-Governor.

Nearly 300 men and women had heard Sir Percy Sykes address the meeting of the East India Association in the Tudor Room of Caxton Hall.

Lord Zetland was in the chair. The meeting was about to close and Lord Lamington had risen to propose a vote of thanks, when a thick-set Indian rose, walked to the Press table, pulled out a revolver and fired.

As the first two shots were fired Lord Zetland toppled over and collapsed on the arms of his chair.

Sir Michael O'Dwyer jumped up. Two shots entered his heart and he fell back dead.

Assassin Fired

Six Shots

The assassin fired six times. With his last two bullets he wounded Lord Lamington and Sir Louis Dane, who had been sitting at each end of the front row of the audience.

Sir Louis was hit in the arm; Lord Lamington's right hand was shattered.

For a shocked second no one moved. The assassin turned, shouted "Make way, make way," and dashed down the aisle.

Two men, one of them in uniform, jumped on a man and threw him.

Then men and women jumped to their feet, shouted, "Murder, police . . a doctor."

A woman doctor, Dr. Grace

(Continued on Back Page)

Sir Michael O'Dwyer—died with two bullet wounds in his heart.

Thirty-seven-year-old Indian, Mahomed Singh Azad, leaving the Caxton Hall with police. He was charged last night with the murder of Sir Michael O'Dwyer and with wounding Lord Lamington, Sir Louis Dane and Lord Zetland by shooting them with a revolver.

Lord Zetland—a bullet grazed his ribs, and he fell.

Lord Lamington was shot in the hand.

FINN, SWEDE, NORWAY PACT

A CONFERENCE between Finland, Sweden and Norway for the conclusion of a treaty of defensive alliance will be opened immediately, declared M. Tanner, the Finnish Foreign Minister, in Helsinki last night.

M. Tanner stated that the war with Russia had prevented the investigation of the possibilities of such a pact, which he said "will secure the frontiers and the independence of these three nations."

Soviet-Rumanian Treaty

He added that it had been agreed by the Governments of the three countries that now a Russo-Finnish peace has been re-established, the question of an alliance should be investigated.

Plans for a non-aggression pact between Russia and Rumania were reported in Bukarest, Rumanian capital, last night to be under consideration. The talks would be held in Berlin.

A military commission composed of high-ranking Rumanian Army officials is at present in Berlin. The Rumanian delegation is reported to have left for Berlin secretly, says the Associated Press.

Sweden to Rebuild Finn Front—Page 3.

Keep smiling

Guinness is good for you

के नाम कर दी।

इधर, देश में सामूहिक नरसंहार की अब तक की सबसे बड़ी घटना कही जाने वाली जलियांवाला बाग हत्याकांड के बाद माइकल ओ ड्वायर को घटना के बाद लंदन भेज दिया गया था। बताते हैं कि ड्वायर को लगने लगा था कि वह अपने शासन काल में हिंदुस्तानियों के भीतर डर बैठाकर वापस अपने वतन आ गया है। लेकिन कोई था जो उसका साये की तरह पीछा कर रहा था। ये कोई और नहीं बल्कि भारत का शेर सिंह था, जो उधम सिंह के नाम से पासपोर्ट बनाकर लंदन पहुँचने की तैयारी कर रहा था। देश की आजादी और जनरल

को गवर्नर रहा माइकल फ्रांसिस ओ' ड्वायर,

जिसने नरसंहार को उचित ठहराया था। ऐसे में अब भारत के इस वीर क्रांतिकारी का एक ही ध्येय था, माइकल ओ'डायर को ख़त्म करके जालियाँवाला बाग हत्याकांड का बदला लेना और भारत माता की आज़ादी में अपनी एक आहुति देना।

ईस्ट इंडिया एसोसिएशन और रॉयल सेंट्रल एशियन सोसायटी की लंदन के कॉक्सटन हॉल में 13 मार्च, 1940 को हो रही बैठक में माइकल ओ'डायर भी वक्ताओं में से एक था। उधम सिंह को जैसे ही यह जानकारी मिली, वह तुरंत उस बैठक स्थल पर पहुँच गए। एक मोटी किताब में अपनी रिवॉल्वर को भलीभांति छिपा लिया। इसके लिए उन्होंने

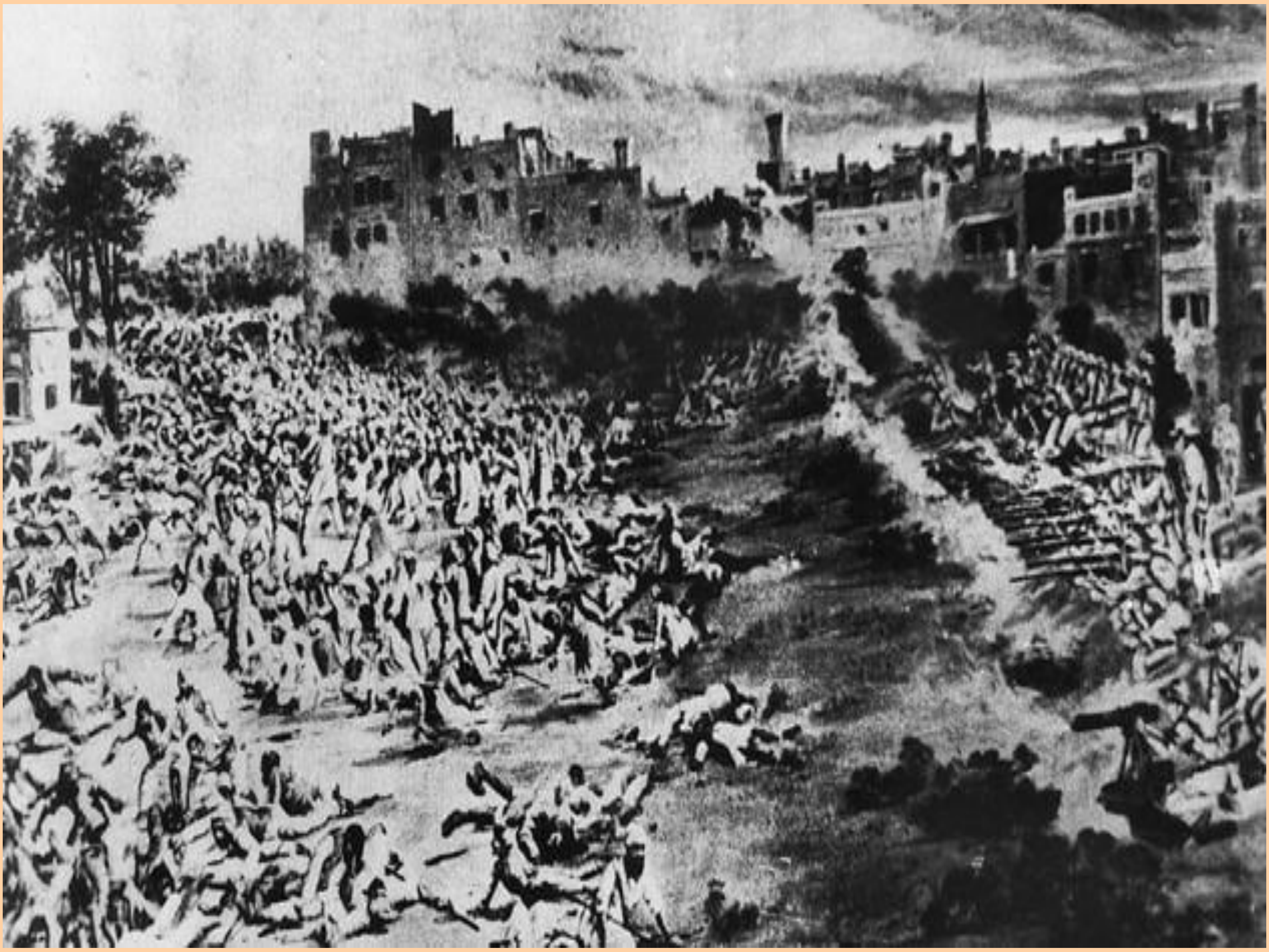

किताब के पृष्ठों को रिवॉल्वर के आकार में उस तरह से काट लिया था, जिससे इसे आसानी से छिपाया जा सके। बैठक के बाद दीवार के पीछे से मोर्चा संभालते हुए उधम सिंह ने माइकल ओ'डायर पर तुरंत गोलियां दाग दीं। दो गोलियां माइकल ओ'डायर को लगीं जिससे उसकी तत्काल मौत हो गई। इसके साथ ही उधम सिंह ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और और दुनिया को संदेश दिया कि अत्याचारियों को भारतीय वीर कभी छोड़ा नहीं करते। उधम सिंह ने वहां से भागने की कोशिश नहीं की और अपनी गिरफ्तारी दे दी और जलियांवाला बाग हत्याकांड के 21 साल बाद बदला ले ही लिया। इस घटना से अंग्रेजी सल्तनत की चूलें हिल गईं और उधम सिंह पर तेजी से मुकदमा चलाया गया। कोर्ट में पेशी पर जज ने सवाल पूछा कि उसने ओ' ड्वायर के अलावा उसके दोस्तों को क्यों नहीं मारा ? उधम सिंह ने जवाब दिया कि वहां पर कई औरतें थीं और हमारी संस्कृति में औरतों पर हमला करना

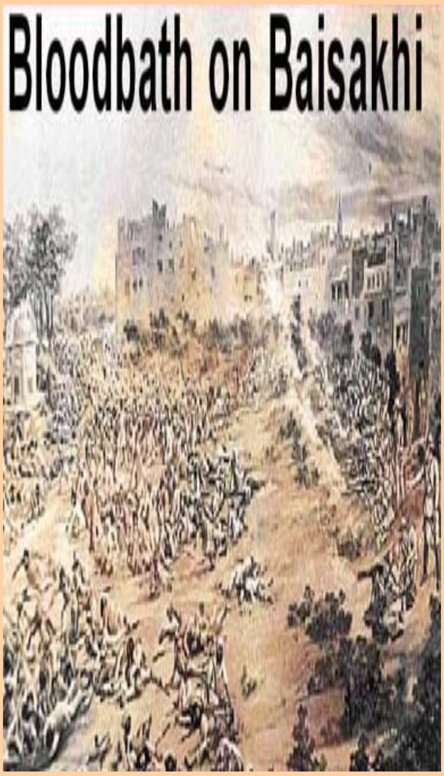

पाप है। अंतत:, 4 जून, 1940 को उधम सिंह को हत्या का दोषी ठहराया और 31 जुलाई, 1940 को उन्हें पेंटनविले जेल में फांसी दे दी गई। आजादी का ये दीवाना लंदन की पेंटनविले जेल में हंसते-हंसते फांसी के फंदे पर झूल गया और इतिहास के पन्नों में अमर हो गया।

उधम सिंह की शहादत व्यर्थ नहीं गई बल्कि उससे निकली चिंगारी आंदोलनकारियों को निरंतर प्रेरणा देती रही। अंग्रेजों को उनके घर में घुसकर मारने का जो काम उधम सिंह ने किया, उसने देश के अंदर क्रांतिकारी गतिविधियों को भी परवान दिया। अंतत: अंग्रेजों को 7 साल के अंदर भारत छोड़ना पड़ा और 15 अगस्त 1947 के सूर्योदय ने अपनी कोमल रश्मियों से एक नये स्वाधीन भारत का स्वागत किया। आज़ादी का अमृत महोत्सव मना रहा भारत वर्ष आज भी शहीद उधम सिंह सहित देश के लिए अपनी जान कुर्बान करने वाले तमाम नाम-गुमनाम नायकों की स्मृतियों को जीवंत रखे हुए है और उनसे प्रेरणा लेता है।

22 दिसंबर - श्री अनुपम मिश्र जयन्ती

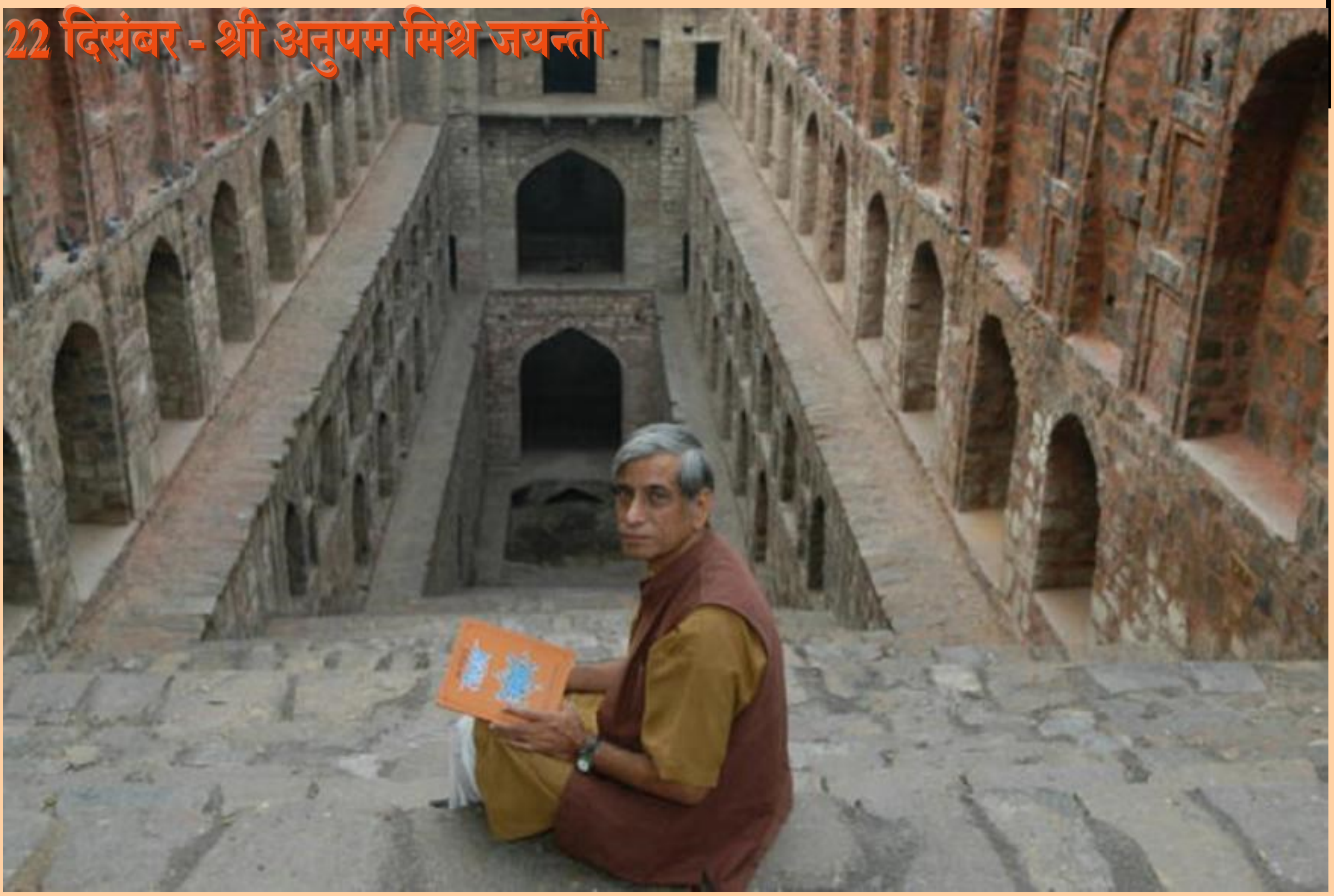

अनुपम साहित्य को खंगालने का वक्त

लेखक: अरुण तिवारी

जब देह थी, तब अनुपम नहीं; अब देह नहीं, पर अनुपम हैं। आप इसे मेरा निकटदृष्टि दोष कहें या दूरदृष्टि दोष; जब तक अनुपम जी की देह थी, तब तक मैं उनमें अन्य कुछ अनुपम न देख सका, सिवाय नये मुहावरे गढ़ने वाली उनकी शब्दावली, गूढ़ से गूढ़ विषय को कहानी की तरह पेश करने की उनकी महारत और चीजों को सहेजकर सुरुचिपूर्ण ढंग से रखने की उनकी कला के। डाक के लिफाफों से निकाली बेकार गांधी टिकटों को एक साथ चिपकाकर कलाकृति का आकार देने की उनकी कला ने उनके जीते-जी ही मुझसे आकर्षित किया। दूसरों को असहज बना दे, ऐसे अति विनम्र अनुपम व्यवहार को भी मैने उनकी देह में ही देखा।

कुर्सियां खाली हों तो भी गांधी शांति प्रतिष्ठान के अपने कार्यक्रमों में हाथ बांधे एक कोने खड़े रहना; कुर्सी पर बैठे हों, तो आगन्तुक को देखते ही कुर्सी खाली कर देना। किसी के साथ खड़े-खड़े ही लंबी बात कर लेना और फुर्सत में हों तो भी किसी के मुंह से बात निकलते ही उस पर लगाम लगा देना। श्रृद्धावश पर्यावरण संबधी पुस्तक भेंट करने आये एक प्रकाशक को अनुपम जी ने यह कहकर तुरंत लौटाया, कि उन्हे पुस्तक देने से उसका कोई मुनाफा नहीं होने वाला।

अरवरी गांव समाज के संवाद पर आधारित 'अरवरी संसद' किताब छपकर आई, तो

उन्होने कहा - "इसे रंगीन छापने की क्या जरूरत थी ?"

उन्होने इसे पैसे की अनावश्यक बर्बादी माना। वहीं गंवई कार्यकर्ताओं की बाबत् तरुण भारत संघ के राजेन्द्र भाई को यह भी कहते भी सुना - "पैसा आये, तो कभी कार्यकर्ताओं को घूमाने ले जाओ। खूब बढ़िया खिलाओ-पिलाओ। दावत करो।" कार्यकर्ताओं पर किए खर्च को वह पैसे की बर्बादी नहीं मानते थी। कभी यह सब उनकी स्पष्टवादिता लगता था, कभी साफ दृष्टि, कभी सहजता और कभी विनम्रता। पत्रकार श्री अरविंद मोहन ने ठीक लिखा था, कभी-कभीं संपर्क में आने वाले को यह उनका बनावटीपन भी लग सकता था।

देह के बाद सिखाते अनुपम

'नमस्कार' और 'कैसे हो ?' - जब तक देह थी, अनुपम जी ने इससे आगे मुझसे कभी नहीं बात की। न मालूम क्यों, उनके सामने मैने भी अपने को हमेशा असहज ही पाया। अब देह नहीं, तो अनुपम जी से लगातार संवाद हो रहा है। उनके सम्मुख अब मैं लगातार सहज हो

रहा हूं। अब अनुपम जी मुझे लगातार सिखा रहे हैं, व्यवहार भी और भाषा भी। उनकी देह के जाने के बाद पुष्पाजंलियों और श्रद्धांजलियों ने सिखाया। देह से पूर्व और पश्चात् अनुपम जी के प्रति जगत का व्यवहार भी किसी पाठशाला से कम नहीं।

भाषा का गांधी मार्ग

बकौल अनुपम - "हिंसा, भाषा की भी होती है। भाषा, भ्रष्ट भी होती है।......गांधी मार्ग की भाषा ऐसी होनी चाहिए, जिसमें न बेवजह का जोश दिखे और न ही नाहक का रोष।"

इससे पता चला कि भाषा का भी अपना एक गांधी मार्ग है। जाहिर है कि हिंसामुक्त-सदाचारी भाषा गांधीवादी लेखन का प्राथमिक कसौटी है। स्वयं को गांधीवादी लेखक से पहले किसी को भी अपने लेखन को भाषा की इस कसौटी पर कसकर देखना चाहिए। मैं और मेरा लेखन, इस कसौटी पर एकदम खोटे सिक्के के माफिक हैं। संभवतः यही वजह रही कि अनुपम जी ने कभी मेरी किसी रचना की न आलोचना की, न ही सराहा और न ही किसी पत्र का कभी उत्तर दिया।

भाषा का मन्ना मार्ग

अनुपम जी के नहीं रहने पर आयोजित आख्यानों में से एक में बोलते हुए अनुपम परिवार की रागिनी नायक ने कानपुर के यशस्वी कवि यश मालवीय की पंक्तियों में समय का संदेश याद दिलाया -

"दबे पांव उजाला आ रहा है।
फिर कथाओं को खंगाला जा रहा है।
धुंध से चेहरा निकलता दिख रहा है।
कौन क्षितिजों पर सवेरा लिख रहा है।"

मैं अनुपम जी में जो अनुपम था, उसे खंगालने

"दबे पांव उजाला आ रहा है।
फिर कथाओं को खंगाला जा रहा है।
धुंध से चेहरा निकलता दिख रहा है।
कौन क्षितिजों पर सवेरा लिख रहा है।"

में लग गया। मैने पाया कि जब तक देह रही, अनुपम पानी लेख खासम-खास पर प्रतिष्ठित रहे। देह जाने के बाद अब उनका लगातार विस्तार हो रहा है; अनुपम साहित्य अब और अधिक देखने को मिल रहा है। अनुपम जी की प्रकाशित पुस्तकों की संख्या 17 है। 'मन्ना: वे गीत फरोश भी थे' - साफ माथे का समाज से लिया यह लेख पढ़ रहा हूं, तो कह सकता हूं कि अनुपम जी ने अनुपम लेखन और व्यवहार के गुणसूत्र पिता भवानी भाई और उनकी कविताओं से ही पाये थे।

"जिस तरह तू बोलता है, उस तरह तू लिख और उसके बाद मुझसे बड़ा तू दिख।"

' 'कलम अपनी साध, और मन की बात बिल्कुल ठीक कह एकाध।"

"यह कि तेरी भर न हो, तो कह, और बहते बने सादे ढंग से तो बह।"

मन्ना यानी पिता भवानीशंकर मिश्र को याद करते हुए अनुपम जी ने उक्त पंक्तियों का विशेष उल्लेख किया है। उक्त पंक्तियों के जरिये भाषा और व्यवहार तक के चुनाव का जो परामर्श भवानी भाई ने दिया, अब लगता है कि अनुपम जी ने उनका अक्षरंश पालन किया। अनुपम जी ने पर्यावरण जैसे वैज्ञानिक पर अपने व्याख्यान भी ऐसी शैली में दिए, मानो जैसे कोई कविता कह रहे हों ; नदी से बह रहे हों। इसीलिए वह अपने साथ दूसरों को बहाने में सफल रहे।

लेखन का समाज मार्ग

बाज़ार से काग़ज खरीद कर लाने की बजाय, पीठ कोरे पन्नों पर लिखना; खूब अच्छी अंग्रेजी आते हुए भी उनके दस्तखत, खत-

किताबत सब कुछ बिना किसी नारेबाजी के, आंदोलन के हिंदी में करना; ये सब के सब संस्कार अनुपम जी को मन्ना से ही मिले। अनुपम जी खुद लिखते हैं कि कविता छोटी है कि बड़ी है, टिकेगी या पिटेगी; मन्ना को इसमे बहुत फंसते हमने नहीं देखा। अनुपम जी का लिखा देखें, तो कह सकते हैं कि उनका लेखन भी टिकने या पिटने के चक्कर में कभी नहीं फंसा। उन्होने जो लिखा, उसमें आइने की तरह समाज को आगे रखा। यदि मन्ना के गीत ग्राहक की मर्जी से बंधे नहीं थे, तो ग्राहक की मर्जी से बंधना तो अनुपम जी का भी स्वभाव नहीं था। कई वजाहत में शायद यह एक वजह थी कि अनुपम जी जो लिख पाये, वह दूसरों के लिए अनुपम हो गया।

"मूर्ति तो समाज में साहित्यकार की ही खड़ी होती है, आलोचक की नहीं।"

अनुपम जी द्वारा भवानी भाई की किसी कविता का पेश यह भाव एक ऐसा निष्कर्ष है, जो पत्रकार और साहित्यकार के बीच के भेद और उनके लिखे के समाज पर प्रभाव का आकलन सामने रख देता है। इस आकलन को सही अथवा गलत मानने के लिए हम स्वतंत्र हैं और उसके आधार पर अपने कौशल और प्राथमिकता सामने रखकर यह तय करने के लिए भी कि हमें लेखन की किस विधा में अपनी कितनी ऊर्जा लगानी है।

राजरोग का विकास मार्ग

देह बिन अनुपम अब मुझे एक और भूमिका में दिखाई दे रहे हैं; एक दूरदृष्टा रणनीतिकार की भूमिका में। उत्तर प्रदेश में भाजपा की सरकार बनी, तो केन-बेतवा नदी जोड़ बनने की संभावना पूरी मानी जा रही थी। पानी कार्यकर्ता पूछ रहे थे कि अब क्या करें ? विकास के नाम पर समाज और प्रकृति विपरीत शासकीय पक्षधरता से क्षुब्ध कई नामी संगठन इस विकल्प पर भी बार-बार विचार करते दिखाई दे रहे थें कि वे खुद एक राजनीतिक दल बनायें; ताकि देश की त्रिस्तरीय जनप्रतिनिधि सभाओं में ज्यादा से ज्यादा जगह घेरकर समाज व प्रकृति अनुकल कार्यो के अनुकूल नीति व निर्णय करा सकें।

ऐसे में अनुपम जी के लिखे ने आगाह किया - "अच्छे लोग भी जब राज के करीब पहुंचते है, तो उन्हे विकास का रोग लग जाता है; भूमण्डलीकरण का रोग लग जाता है। उन्हे भी लगता है कि सारी नदियां जोड़ दें, सारे पहाड़ों को समतल कर दें, तो बुलडोजर चलाकर उनमें खेती कर लेंगे।...... इसका सबसे अच्छा उदाहरण रामकृष्ण हेगड़े का है। कर्नाटक में 37 साल पहले बेड़धी नदी पर एक बांध बनाया जा रहा था। किसानों को इस बांध बनने से उनकी खेती का चक्र नष्ट हो जाने की आशंका हुई। उन्होने इसका विरोध किया। कर्नाटक के किसानों ने संगठन बनाकर सरकार से कहा कि वे उन्हे इस बांध की ज़रूरत नहीं है। संपन्नतम खेती वे बिना बांध के ही कर रहे हैं और इस बांध के बनने से उनका सारा चक्र नष्ट हो जायेगा। रामकृष्ण हेगड़े, उस आंदोलन के अगुवा बने। पांच साल तक वह इस आंदोलन के एकछत्र नेता रहे। बाद में वह राज्य के मुख्यमंत्री बने। बांध बनने के बाद हेगड़े खुद बेड़धी बांध के पक्ष में हो गये। उन्हे भी राजरोग हो गया।"

राजरोग का चिकित्सा मार्ग

मैने पूछा कि ऐसे में एक कार्यकर्ता की भूमिका क्या हो ? अनुपम जी ने नदी जोड़ को राजरोगियों की ख़तरनाक रज़ामंदी कहा। आवाज़ दी कि इस रज़ामंदी के बीच हमारी आवाज़ दृढ़ता और संयम से उठनी चाहिए। जो बात कहनी है, वह दृढ़ता से कहनी पड़ेगी। प्रेम से कहने के लिए हमें तरीका निकालना पड़ेगा।

"देखो भाई, प्रकृति के खिलाफ हो रहे अक्षम्य अपराधों को न तो क्षमा नहीं किया जा सकता है और न ही इसकी कोई सजा भी दी जा सकती है। नदी जोड़ना, विकास की कड़ी में सबसे भंयकर दर्जे पर किया जाने वाला काम होगा। इसे बिना कटुता जितने अच्छे ढंग से समझ सकते हैं, समझना चाहिए। नहीं तो कहना चाहिए कि भाई अपने पैर पर तुम कुल्हाड़ी मारना चाहते हो, तो मारो; लेकिन यह

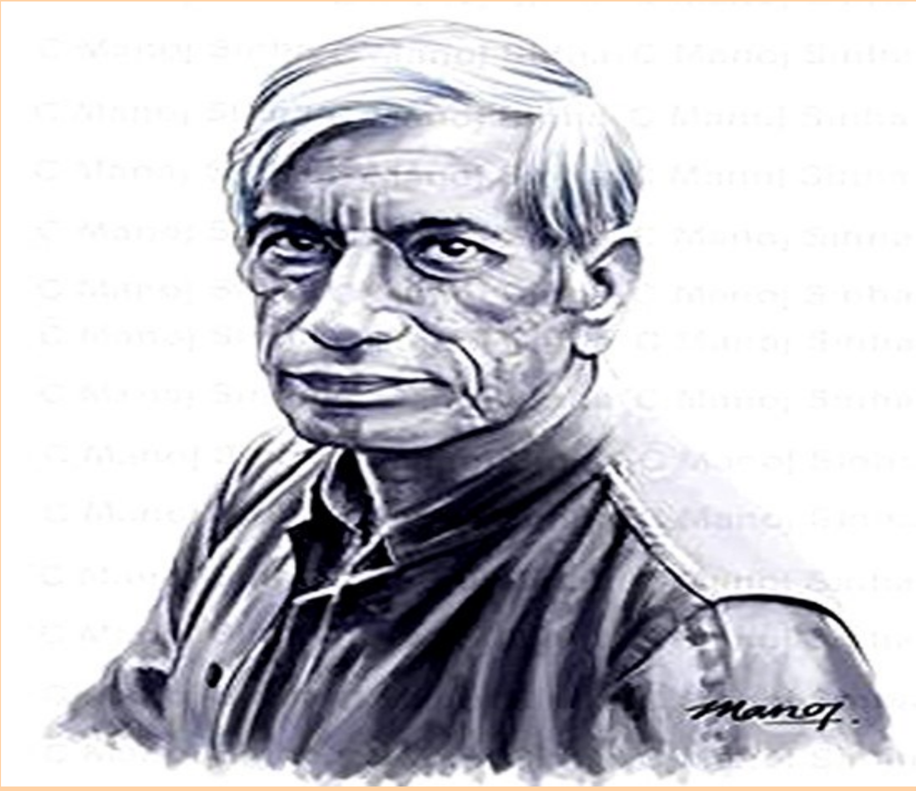

निश्चित ही पैर-कुल्हाड़ी है। ऐसा कहने वालों के नाम एक शिलालेख में लिखकर दर्ज कर देना चाहिए। और कुछ विरोध नहीं हो सके तो किसी बड़े पर्वत की चोटी पर यह शिलालेख लगा दें कि भैया आने वाले दो सौ सालों तक के लिए अमर रहेंगे ये नाम। इनका कुछ नहीं किया जा सका।"

अनुपम जी ने यह भी कहा - "हमें अब सरकार का पक्ष समझने की कोई ज़रूरत नहीं है। उसे समझने लगे, तो ऐसी भूमिका हमें थका देगी। हम कोई पक्ष नहीं जानना चाहते। हम कहना चाहते हैं कि यह पक्षपात है देश के साथ, देश के भूगोल के साथ, इतिहास के साथ; इसे रोकें।"

इस वक्त भी सरकार का पक्ष समझने की भूमिका ने देश के कई लोगों को सचमुच थका दिया है। लिखते, कहते, प्रेम की भाषा में प्रतिरोध करते हुए भी काफी समय बीत गया। बकौल अनुपम, जब राज हाथ से जाता है, तो यह रोग अपने आप चला जाता है। हेगड़े के पाला बदलने के बावजूद किसान आंदोलन चलता रहा। हेगड़े का राज चला गया। राजरोग भी चला गया। आंदोलन के कारण वह बांध आज भी नहीं बन सका है। राजरोग से निपटने का आखिरी तरीका यही है।

अच्छे विचारों की हिमायत का संदेश

भारतीय ज्ञानपीठ ने हाल ही में अनुपम जी के व्याख्यानों को प्रकाशित किया है। पुस्तक का शीर्षक है - 'अच्छे विचारों का अकाल'। व्याख्यानों के चयन और प्रस्तुति का दायित्व निभा राकी गर्ग ने बता दिया है कि अच्छे विचारों के हिमायती सदैव रहते हैं, देह से पूर्व भी, पश्चात् भी। अकाल से भयंकर होता है, अकाल में अकेले पड़ जाना। अतः देह के बाद अनुपम मिश्र जी के इस संदेश को कोई सुने, न सुने; यदि अच्छा लगे तो हम सुनें; कहना शुरु करें; कहते रहें; कहने वालों का शिलालेख बनाते रहें; इससे अकाल में भी साझा बना रहेगा। अकाल में भी अच्छे विचारों का अकाल नहीं पड़ेगा, तो एक दिन ऐसा ज़रूर आयेगा, जब ऐसे राजरोगियों का राज जायेगा। जाहिर है कि तब राजरोग खुद-ब-खुद चला जायेगा। किंतु यह सब कहते-करते हम यह न भूलें कि कोई भी पतन, गड्डा इतना गहरा नहीं होता, जिसमें गिरे हुए को स्नेह की उंगली से उठाया न जा सके। हालांकि व्यवहार की इस सीढ़ी को लगाने की सामर्थ्य सहज संभव नहीं, लेकिन किसी भी गांधी स्वभाव की बुनियादी शर्त तो आखिरकार यही है।

अंत में यही कह सकता हूं कि अनुपम जी तो गए। हम उन्हे अनुपम बनाने वाली भाषा, संवेदना और मूल्यों को संजो सकें तो समझिए कि हम पर कुछ छाप अनुपम है।

साँप

लघुकथा : संजय कुमार सिंह

"साँप को मार दिया गया" आदमी ने उत्साह के साथ कहा,"बहुत खतरनाक साँप था। बहुत बड़ा विषधर!साढ़े तीन हाथ लम्बा!"

" साँप कहाँ था भाई?"

"सड़क किनारे झाड़ी में।"

" तो आदमी को क्या खतरा था" दूसरे आदमी ने कहा," साँप तो झाड़ी में था..."

" अजीब अमहक आदमी हैं आप।"पहला बिगड़ा," साँप काटने से आदमी मर जाता है। किसी को काट लेता तब?"

" यह सही बात नहीं है कि झाड़ी में जाकर कोई साँप मारे।"दूसरे आदमी ने साफ-साफ कहा।

"मतलब?" आदमी अकबकाया।

"मतलब साफ है।" दूसरे आदमी ने कहा," यहाँ जितना खतरा आदमी से आदमी को है ... उतना साँप, बिच्छू और बाघ से नहीं।फिर साँप, बिच्छू या बाघ मारने से फायदा? "

पहला आदमी लाजवाब हो गया।

चंद्रकांत जी

चंद्रकांत जी आज सुबह उठे ही थे, कि बगल का बिस्तर खाली देखकर उनका मन खिन्न हो गया था। जनाब पैंतीस सालों में ऐसा पहली बार हुआ कि उषा जी उन्हें अकेला छोड़ कर कहीं बाहर चली गई। असल में बिटिया की जचगी होने वाली थी।

उसकी सास के हाथ की हड्डी टूट गई, तो होना क्या था प्लास्टर चढ़ा गया था। बेटी की परेशानी जान उषा जी अपने बेटे के साथ तुरंत चली गई। हालांकि उषा जी ने साथ चलने का बहुत इसरार किया लेकिन वही नहीं माने थे। उनका कहना था इतने लम्बे समय के लिए वे नहीं जाएंगे।

ऐसा नहीं था कि वे पति पत्नी कभी अलग नहीं रहे थे। चंद्रकांत जी सरकारी दौर पर अक्सर जाते थे। तब उनका इंतजार करना उषा जी के हिस्से आता था।

रिटायरमेंट के बाद भी लंबा समय के बीत जाने पर, ऐसा पहली बार हुआ कि उषा जी उनके बगैर कहीं दूर गई हूं। आज तो पहला ही दिन था और चंद्रकांत जी अकुलाने लगे थे।

घर में बहु रीना थी, जो फ्रीलांस पत्रकार थी। उनके घर का माहौल बेहद खुशनुमा था। उषा जी, बहू और चंद्रकांत जी साथ मिलकर खूब मजे करते थे। वे सोकर उठे ही थे कि बहू ने आकर चंद्रकांत जी की चाय कमरे में रख दी।

चाय पीते हुए , चंद्रकांत जी को अचानक याद आया कि रोज सुबह सैर से लौटते हुए दूध, दही, पूजा के फूल इत्यादि उषा जी ले आती थीं।

चंद्रकांत जी ने बहू को आवाज दी "रीना ! बेटा बाजार से और कुछ भी लाना है क्या?"

रीना ने मुस्कुराते हुए कहा "अरे ! आप रहने दें, मैं थोड़ी देर में ले आऊंगी!"

"अरे नहीं ! मेरे रहते तुम क्यों जाओगे, उषा सुनेगी तो मुझे ही डांट लगाएगी !" चंद्रकांत जी ने चाय पी और एक थैला लेकर पास की दुकान की ओर चल दिए।

उनके लिए यह एक नया काम था। सारी उम्र सुबह की चाय के बाद वे अखबार पढ़ते थे, फिर तैयार होकर दफ्तर चले जाते। शाम को सैर के लिए पास के पार्क में जरूर जाते थे। जवानी के दिनों में जिम के शौकीन थे। बाकायदे मेंबरशिप ले रखी थी। बाजार में कुछ बड़ा सामान खरीदने के लिए ही जाते। दूध दही सब्जी किराने का सामान, इस सब की जिम्मेदारी उषा जी के जिम्मे थी। कभी कभार वे दबी जबान से कहती तो वह बस टाल जाते थे।

आज बात कुछ और थी, उषा जी घर पर नहीं थीं और बेमन से ही सही चंद्रकांत जी ने आज यह जिम्मेदारी खुद पर ली।

चंद्रकांत पार्क की तरफ बढ़े ही थे, कि सामने दोस्तों की टोली सैर से लौट रही थी और उन्हें देखते ही बड़े जोर से ठहाका लगाकर हंसी "क्या हुआ चंद्रकांत! भाभी के जाते ही तुम्हारी ड्यूटी लग गई !"

और वह तीनों दोस्त समवेत स्वर में हंसने लगे।

चंद्रकांत जी खिसियाहट छुपाते हुए आगे बढ़ गये। दुकान पर अब थोड़ी भीड़ भी थी। उन्हें देख वहां हर आदमी थोड़ा आश्चर्य में था। "अरे आप कैसे चंद्रकांत जी! लगता है उषा जी बाहर गई हैं!"

सब को जवाब देते देते वे खीझ गए थे। तभी दुकानदार ने सामान्य तौर पर बोला "अरे अंकल! दूध चार पैकेट जाता है। आप पहली बार आए हो इसलिए पता नहीं है!"

यह सुनते ही चंद्रकांत जी का पारा चढ़ गया।

"चुप रहो! मैं जो कह रहा हूं बस दो पैकेट दो,

और यह क्या पहली बार आ रहा हूं। पता नहीं.....! मैं यहीं रहता हूं!"

गुस्से में उन्होंने दो पैकेट दूध थैले में रखा और तेज कदमों से वापस लौट गए।

अभी घर के मोड़ पर पहुंचे ही कि खुदा ना खास्ता चप्पल टूट गई। बस अब तो क्या कहें वो बेहद हैरान परेशान हो गए।

एक हाथ में चप्पल और दूसरे हाथ में थैला लेकर वह घर के गेट की ओर बढ़े थे, कि अखबार डालने वाले राजू की साइकिल से टकरा गए।

चंद्रकांत जी ने आव देखा ना ताव राजू को एक तमाचा जड़ दिया और आगे बढ़कर उसकी साइकिल की हवा निकाल दी। तेज स्वर में बड़बड़ाते हुए घर में दाखिल हुए।

चंद्रकांत जी को गुस्से में देख रीना की कुछ पूछने की हिम्मत नहीं पड़ी। वे सीधे अपने कमरे में चले गए।

उषा जी को गए आज दूसरा ही दिन था मगर किसी काम में उनका मन नहीं लग रहा था। यहां तक की आज उन्होंने अखबार भी न देखा। रीना के इसरार करने पर खाना भी बड़े बेमन सिखाया था। शाम को भी वे सैर के लिए भी नहीं गए।

जाने क्या सोचकर अगली सुबह वे जल्दी उठे और जैसे तैसे खुद को समझाया की जब तक उषा जी लौट कर नहीं आती उनके जिम्मे के सारे काम खुद किया करेंगे। पहले थोड़ी दूर सैर करेंगे फिर दूध इत्यादी लेकर घर आ जाएंगे।

यही सोच कर चंद्रकांत जी सुबह-सुबह तैयार होकर बाहर निकल गए

तेज कदमों से पार्क में उन्होंने आठ दस चक्कर लगाए, फिर सड़क की तरफ चल दिए। अभी दस कदम ही चले होंगे कि अचानक आंखों के आगे अंधेरा सा छा गया जब तक वह समझते सड़क के बीच वह चक्कर खाकर गिर पड़े।

चंद्रकांत जी को जब होश आया तो उन्होंने खुद को एक क्लीनिक के बेड पर लेटे हुए पाया। पास में डॉक्टर, राजू और बेहद परेशान से रीना खड़ी थी। डॉक्टर ने बताया की अचानक बीपी बढ़ जाने के कारण वह बेहोश होकर सड़क पर गिर गए थे। राजू ने ही किसी तरह ऑटो से उन्हें क्लीनिक पहुंचाया था। बाद में रीना को भी खबर कर दी थी।

अगले तीन दिन तक वे वही एडमिट रहे इस बीच राजू सुबह शाम उनका टिफिन वगैरह लेकर आता जाता था।

चौथे दिन चंद्रकांत जी घर आ गए। इस बात की खबर उषा जी को नहीं दी गई थी। उनके घर आने के बाद भी राजू घर बाहर के सारे काम करता दिखाई देता था।

चंद्रकांत जी मन ही मन कहीं शर्मिंदा थे। उन्हें अपनी गलती का एहसास हो रहा था। उस रोज बेवजह के गुस्से में उन्होंने राजू को तमाचा मार दिया। आज वही राजू पूरी जी जान से उनकी सेवा में लगा है।

लगभग एक हफ्ते बाद चंद्रकांत जी बरामदे में बैठे थे। तभी राजू आता दिखाई दिया उन्होंने बड़े प्यार से राजू को बुलाया और पूछा "अखबार डालने से आखिर कितने पैसे मिल जाते हैं?"

राजू अचानक रुक गया फिर धीरे से बोला "अंकल ! मुझे अखबार डालने से तो थोड़े से पैसे मिलते हैं, लेकिन उसके बाद मैं लोगों के घर में खाना भी बनाता हूं। आपकी सोसाइटी के लोगों के छोटे बड़े छुटपुट काम भी करता हूं।" लोग थोड़े बहुत पैसे देते रहते हैं।

राजू अचानक रुक गया फिर धीरे से बोला "अंकल ! मुझे अखबार डालने से तो थोड़े से पैसे मिलते हैं, लेकिन उसके बाद मैं लोगों के घर में खाना भी बनाता हूं। आपकी सोसाइटी के लोगों के छोटे बड़े छुटपुट काम भी करता हूं।" लोग थोड़े बहुत पैसे देते रहते हैं।

फिर चंद्रकांत जी को देखते हुए बोला "असल में मैं इंटर की तैयारी कर रहा हूं! "वह जिस रोज आपने मुझे मारा था ना! मैं बहु जी के लिए पूजा के फूल आया था। आंटी जी चली गई थी। मुझे पता था इसलिए मैं खुद ले आया था। उस रोज मेरी कोई गलती नहीं थी। असल में मेरी साइकिल का ब्रेक भी खराब है, वह बहुत पुरानी पापा की साइकिल है। पापा तो हैं नहीं बस वही एक उनकी निशानी है। उसे ठीक कराने के लिए पैसे भी नहीं हैं।"

आज चंद्रकांत जी के प्यार से पूछने की वजह से शायद उस चाटे का दर्द उभर आया था। यह सब कहते हुए राजू बड़ा मायूस सा दिख रहा था। चंद्रकांत जी कुछ क्षण चुप रहे फिर बोले "तू मेरे घर में काम करेगा...! अखबार फेंक कर इतना थक जाएगा तो पढ़ेगा कैसे !"

"वह काम किसी और जरूरतमंद आदमी को दे दे। मैं तुझे पढ़ाया करूंगा, बाकी लोगों के घर का काम निबटा कर तू सीधे यहां आ जाया कर। फिर मैं तुझे पढ़ाऊंगा भी और यहां के काम के पैसे यानी तनख्वाह भी अलग से दूंगा!"

"और हां अगर मेहनत से पढ़ लिया ना, तो आगे भी पढ़ाऊंगा!" राजू के चेहरे पर एक सुखद आश्चर्य सा आ गया था।

वह आंखों में आश्चर्य लिए चंद्रकांत जी का चेहरा देख रहा था। वे कुछ बोले नहीं और उठकर अपने कमरे की तरफ जाने लगे, तभी जैसे उन्हें कुछ याद आया तो मुड़कर बोले "सुन गैराज में एक साइकिल पड़ी है, कभी मेरा बेटा उसे चलाता था, एक्सरसाइज करने के नाम पर.... अब बेकार वहीं खड़ी धूल खा रही है।"

फिर जेब से सौ रुपए निकालकर चंद्रकांत जी ने राजू की तरफ बढ़ाए "यह पैसे ले और जाकर साइकिल में हवा पानी ठीक करा ला, उसे तू इस्तेमाल कर!"

चंद्रकांत जी ने मुस्कुराकर राजू के सर पर हाथ फेरा। राजू मुस्कुरा रहा था, मगर अब उसकी आंखों में नमी भी थी..... शायद उस रोज़ लगे चांटे के जख्मों पर आज मरहम लग गई थी।

किरण शुक्ला

कटहल

डॉ सरला सिंह स्निग्धा

राम प्रसाद जी का परिवार बनारस शहर के प्रसिद्ध रामघाट पर गंगा जी के किनारे स्थित पक्का महाल सिंधिया हाउस के पुरानी हवेली के दो कमरों में किराए पर रहते थे।उनके परिवार में पत्नी बेटा ,बहू तथा छोटा नाती कुल पांच लोगों का परिवार था। उस समय लोगों में बहुत एकता, प्रेम, भाईचारा व अपनापन हुआ करता था।पूरा ही मुहल्ला एक हुआ करता था।
मतलब यह की मुहल्ले की बेटी सबकी ही बेटी जैसी होती थी और मुहल्ले की बहू सबकी बहू मानी जाती थी। राम प्रसाद की बहू भी हवेली में रहने वाले सभी लोगों के लिए बहू समान थी और उनकी बहू रत्ना भी सबको वैसा ही आदर देती जैसा वह अपने सास और ससुर का करती थी। वह बहुत ही अच्छी थी सूरत से भी और सीरत से भी।
रत्ना के दो बेटे थे ।बड़ा वाला अपने ननिहाल में रहकर पढ़ाई कर रहा था तथा छोटा बेटा उसके साथ ही रहता था।वह वहां के एक प्रसिद्ध जाने-माने विद्यालय में चौथी कक्षा में पढ़ रहा था। विद्यालय आने जाने के लिए बस की व्यवस्था थी। बस उनके घर से कुछ दूरी पर उतारती थी जहां से चार पांच बच्चे मिलकर गलियों को पार करते अपने आप अपने-अपने घर आ जाते थे।
बनारस में घाट के किनारे किनारे करीब एक हज़ार सालों से रजवाड़े खानदानों की कई हवेलियां और धर्मशालाएं बनी हुई हैं जैसे कि भोसले हाउस, सिंह हाउस, होल्कर हॉउस इस तरह और आज भी बड़ी बड़ी धर्मशालाएं हैं ।इन धर्मशालाओं में तरह-तरह के फलों के पेड़ हैं और पानी की भी व्यवस्था है। यहां रहने की भी अच्छी व्यवस्था है।उन्ही में से एक धर्मशाला पड़ती थी जिसका नाम था अहिल्याबाई होल्कर हाउस और धर्मशाला। इसमें ठंडे पानी की भी व्यवस्था थी। बच्चे बस से उतरकर पहले ठंडा पानी पीते फिर गलियों में से होते हुए अपने घर चले जाते थे।
एक दिन बच्चे पानी पी रहे थे कि उनमें से एक की नजर धर्मशाला में लगे कटहल के पेड़ पर पड़ी। कटहल के पेड़ में उसके तने में नीचे जमीन तक कटहल ही कटहल लदे पड़े थे। बालक और बानर दोनों एक जैसे कहे गये हैं यानी दोनों ही चंचलता में समान होते हैं। एक बच्चे ने कहा,"सामने देखो कटहल के पेड़ पर कितने सारे कटहल लगे हुए हैं।"
"अरे हां जमीन तक लदे पड़े हैं चलो तोड़ते है घर ले चलेंगे । यह देखकर मां बहुत खुश होंगी।"
सभी बच्चों ने एक एक कटहल तोड़कर अपने अपने बैग में रख लिया और सब घर चले गए। उन्हीं पांच बच्चों में रत्ना का बेटा अंकुश भी था। वैसे तो उसके स्कूल से आने के बाद रत्ना रोज उसका बैग देखती थी कि अभी वह बच्चा है, उसके बैग में गलती से भी किसी की कोई वस्तु तो नहीं आ गई। पर आज तो इसका उल्टा हुआ ।अंकुश ने अपने आप बैग मां के सामने कर दिया,"मम्मी देखो आज मैं क्या ले आया हूं?"यह कहते-कहते उसने कटहल मां के सामने कर दिया।
कटहल देखकर मां आवाक रह गई। उसने पूछा, "बेटा कहां मिला यह ?"
बच्चे ने सबकुछ ज्यों का त्यों बता दिया।
रत्ना ने उस समय बच्चे को कुछ नहीं कहा। यूनिफॉर्म बदलवाया,खाना खिलाया फिर बोली ,"अब कटहल बैग में रखो और मेरे साथ वहां चलो जहां से इसे तोड़ा है।"
"जी मम्मी!" कहकर अंकुश ने ठीक वैसा ही किया जैसा मां ने आदेश दिया। उसको अभी कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था की उसकी मां करना क्या चाहती हैं?
दोपहर की सख्त चिलचिलाती धूप की परवाह किए बिना रत्ना ने अपने सिर पर पल्लू रखा और बेटे का हाथ पकड़ कर वहां चल दीं जहां से वह कटहल तोड़कर ले आया था। रत्ना की आदत कहीं बाहर जाने की नहीं थी । वह घर से बाहर शायद ही कभी निकलती हो इस कारण उसे वहां के किसी भी जगह का पता नहीं था।

पर इन सब की परवाह किए बिना अहिल्या बाई धर्मशाला पूछते हुए चल दीं। उसका बेटा अंकुश ही उसे उस धर्मशाला तक ले आया। वहां पहुंचने पर उसे देखकर के वहां का मैनेजर तुरंत ही बाहर निकल आया लग रहा था मानों उसे जानता हो , और बोला, "जी भाभी जी ,आप कैसे यहां तक आयीं?"

रत्ना ने बेटे की ओर देखकर कहा,"बेटे कटहल निकाल कर अंकल जी को दो और बताओ कि तुम उसे यहां से तोड़ कर ले गये थे।"

बच्चे ने वैसा ही किया ।उसे अब बहुत शर्म सी लग रही थी। जब बच्चे ने कटहल दे दिया तब फिर बोली," बेटे अब अंकल से सॉरी बोलो और कहो की अब तुम कभी भी ऐसा नहीं करोगे!"

बेटे ने फिर वैसा ही किया। उसकी आंखों में आंसू भर आया था, उसे पता चल गया था कि उसने वहां से कटहल तोड़कर सही काम नहीं किया है। मैनेजर ने कटहल वापस देते हुए कहा, "कोई बात नहीं भाभीजीआप इसे अपने घर ले जाइए और कोफ्ते बना लीजिएगा।"

मगर रत्ना ने उसे लेने से मना कर दिया। वह बोली, "भाई साहब अगर आज मैं इसे ले लूंगी तो आगे चलकर यह चोर बन जायेगा।"

शाम को यह सारी बात जब रामप्रसाद जी ने सुनी तो रत्ना के लिए उनके मन में गर्व के भाव जाग उठे। उन्होंने पहले बच्चे को अपने पास बुलाकर समझाया ,"बेटा किसी की भी कोई भी वस्तु नहीं लेनी चाहिए। बिना पूछे यदि हम किसी की चीज लेते हैं तो उसे चोरी कहा जाता है।" बच्चे ने आइन्दा किसी की भी चीज न लेने का वादा किया। फिर उन्होंने रत्ना को बुलाया और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा,"बहू मां हो तो तुम्हारी जैसी। अगर सभी माताएं ऐसी ही हो जायें तो पूरा समाज ही सुधर जाए। "

यही नहीं वहां पर मौजूद सभी लोग रत्ना की आदर्शवादी चरित्र की दिल से तारीफ कर रहे थे।

काम की बातें,
अक्सर कर देती हैं बोझिल ...
मन और माहौल को
तो चलो,
फिर कुछ बेकाम-बेकार सी
बात करते हैं
किसी बात पर, बेबात
ठहाके लगाते हैं,
किसी बात पर होंठ दबाकर
मुस्कुराते हैं
कुछ अटपटी बातों को
खट्टी-मीठी गोली की तरह
मुँह में घुमाते हुए
चटकारे लगा खुलकर
खिलखिलाते हैं...।

सारे दिन की थकन से,
बेमतलब-सी अनबन से
किसी की बात के कसैलेपन से
जो घुल गई है मुँह में कड़वाहट
चूरन-सी चटपटी बातों के चटाखे लगा
कसैलापन भुलाते हैं।
बातों के गोलगप्पों में ,
मज़ाक की चटनी लगा,
चटपटे चुटकुलों का पानी भर
आज बातों के चटोरे बन जाते हैं।
चलो दोस्त
कुछ बेकार की बातें बनाते हैं।

शालिनी रस्तौगी, गुरुग्राम

भिंडी और आलू की
तय हो गई सगाई।
कद्दू को न्योता भेजा
और गाजर भी बुलाई।

शलजम थोड़ा सा इतराया
धनिया थोड़ा था घबराया
ककड़ी को सब भूल गए तो
उसने आकर करी लड़ाई।
भिंडी और आलू की...

खीरा आया नाचा गाया
टिंडे ने ढोलक खूब बजाई
बैंगन आया लुढ़क लुढ़क कर
मूली ने आकर ली जम्हाई।

गोभी बैठी सजी धजी सी
मेथी भी थी लदी फदी सी
लौकी थी नाराज सभी से
अदरक की कर दी पिटाई।
भिंडी और आलू की--

कटहल पंडित बनकर आया
पालक को गले लगाया
मिर्ची को नहीं था न्योता
वह गुस्से से झल्लाई।
भिंडी और कद्दू की --

लाल टमाटर शरमाया सा
प्याज आया भरमाया सा
सारी सब्जियों में रौनक थी
सबने दावत भी उड़ाई।
भिंडी और आलू की--

दिव्या शर्मा, गुरुग्राम

हौसला

ट्रिं ट्रिं

"आप ऊषा जी बोल रही हैं "

"जी, बताइये ...."

"आपके लिये शुभ समाचार है ...ओलंपिक में गोल्ड मेडल के लिये 'पद्म पुरुस्कार 'के लिये आपके नाम का चयन हुआ है "

प्रसन्नता के अतिरेक में उनकी आंखें छलछला उठीं थीं , उन्होंने अपने मां पापा को यह शुभ सूचना दी तो मां पापा ने उन्हें अपनी बाहों में भर कर उनका माथा चूम लिया था।

मां और पापा यह आपकी मेहनत लगन और अथक परिश्रम का फल है, जिसने मुझे इस पुरुस्कार के योग्य बनाया।

ऊषा जी की आंखों के सामने उनका अतीत चलचित्र की भांति जीवंत हो उठा ....

साधारण परिवार की लाडली जब 3 वर्ष की थी तो बुखार ने उसे अपाहिज बना दिया था ,... वह मां पापा की गोद में इस डॉक्टर से उस डॉक्टर के पास दौड़ती रहती। कोई भी दुआ ताबीज और डॉक्टर कुछ भी नहीं कर पा रहे थे। बड़ी होती जा रही थी परंतु शरीर स्पंदनहीन था।

पापा की छोटी सी दुकान यहां वहां डॉक्टरों के पास जाने के कारण बंद हो गई थी , वह कर्जदार बन गये थे। परंतु यदि कोई भूल से भी उन्हें बेचारी कह देता तो उस पर नाराज हो उठते थे।

एक विशेषज्ञ डॉक्टर ने इलेक्ट्रिक शॉक का ट्रीटमेंट करवाने की सलाह दी .... अब मुश्किल यह थी कि 10 साल की लुंजपुंज लड़की को तीन बस बदल कर कैसे लेकर जाया जाये लेकिन पापा ने हार नहीं मानी और दो साल तक लेकर जाते रहे , इसका असर भी हुआ . शरीर के ऊपरी भाग में हरकत होने लगी परंतु निचला हिस्सा निष्क्रिय रहा फिर वहां के डॉक्टरों ने भी हाथ खड़े कर दिये ....

उस समय मां लक्ष्मी और पापा फफक कर रो पड़े थे , यह तो निश्चित हो गया था कि उनकी बेटी ऊषा कभी भी अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो सकेगी । फिर एक डॉक्टर ने आशा की किरण जगाते हुये चेन्नई के ऑर्थोपेडिक सेंटर ले जाने की सलाह दी . उन्होंने बताया कि वहां पर दिव्यांग बच्चों को खेलकूद के लिये प्रोत्साहित किया जाता है । मां पापा वहां लेकर गये और सिसकते हुये उन्हें वहां छोड़ कर आ गये थे वहां पर पैरों की हड्डियों की कई बार सर्जरी हुई , सर्जरी , फिजियोथैरेपी और एक्सरसाइज़ का अंतहीन सिलसिला चलता रहा ... वहीं पर दूसरे बच्चों को खेलते देख कर उन्हें भी रुचि उत्पन्न हो गई थी। व्हीलचेयर उनके जीवन का हिस्सा बन चुकी थी लेकिन दूसरे बच्चों को देख कर उनका आत्मविश्वास और जीवन जीने का हौसला बढ गया था।

वह 15 वर्षों तक चेन्नई के सेंटर में रहीं फिर बंगलुरू में आकर अपना ग्रैजुएशन पूरा किया ... यहीं पर पैराओलंपिक के विषय में मालूम हुआ और फिर यहीं पर शॉटपुट और व्हीलचेयर रेसिंग की प्रैक्टिस शुरू हुई । उनकी कुछ कर गुजरने की लगन और परिवार के सहयोग से उनके खेल में निखार आता गया .... कड़ी मेहनत और बुलंद हौसले के कारण सफलता उनके कदम चूमने लगी।

स्थानीय स्तर, फिर प्रादेशिक स्तर पर मेडल मिलने का सिलसिला शुरू हुआ तो राष्ट्रीय स्तर के बाद ओलंपिक जीतने का सपना स्वाभाविक हो गया था। उन्होंने किराये की व्हीलचेयर से अपना काम चलाया था।

जीवन का अविस्मरणीय पल ओलंपिक मेडल जीतने का क्षण था ... हाथ में तिरंगा उठा कर गर्वित हो उठी थी। उन्हें खेल कोटे से बैंक में डिप्टी मैनेजर की नौकरी मिल गई थी। इतने दिनों के बाद घर की दशा बदलने लगी थी। सबको अपने जीवन की कहानी , अपने परिवार के सहयोग की बातें बार बार बताते बताते वह कुशल वक्ता बन गई।

बंग्लुरू में एक फाउंडेशन की शुरुआत की है जहां गरीब दिव्यांग बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती है और वहां पर बच्चों के हुनर को निखार कर उन्हें स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास किया जाता है।

मां की आवाज से वह वर्तमान में लौटीं थीं , बाहर ढोल नगाड़े बजने की आवाज और भीड़ का शोर उनके कानों में पड़ रहा था ...

जब लोगों नें उनसे कुछ बोलने को कहा तो वह बोलीं , 'इस सम्मान का असली हकदार तो मेरा परिवार है' जिसने एक दिव्यांग बेटी के मन में विश्वास जगाया , जीवन में स्वयं कभी हौसला नहीं खोया ... इसी परिवार के सहारे सिल्वर , गोल्ड मेडल जीतती चली गई ...

हमारी सबसे बड़ी दिव्यांगता हमारे मन की हीन भावना है। हम दूसरों से कमतर हैं , कमजोर हैं फिर आप मानसिक रूप से कमजोर बन जाते हैं। वह शरीर से दिव्यांग अवश्य थीं परंतु मेरे परिवार ने मुझे दिल से कभी दिव्यांग नहीं बनने दिया। मैं सोचती हूं कि मैं दुनिया की सबसे खुशकिस्मत महिला हूँ। यदि हम दूसरों से शिकायत करने के बजाय यह सोचें कि हम समाज के लिये क्या कर सकते हैं। यदि देने की प्रवृत्ति मन में रखें तो अवश्यमेव यह दुनिया बहुत खूबसूरत और सुंदर बन जायेगी।

हम सबको कभी हिम्मत नहीं हारनी चाहिये ... यदि मेरे परिवार ने हिम्मत हार ली होती तो वह भी कहीं अंधकार की गर्त में खो गई होतीं ....

पद्मा अग्रवाल

राष्ट्रपति की वेदना : कैसे मिले सस्ता-समुचित न्याय

अरुण तिवारी

हज़ारों भारतीय ग़रीब सिर्फ इसलिए जेलों में जीवन गुजारने को विवश हैं, क्योंकि वे न संविधान की मूल भावना से परिचित हैं और न ही अपने संवैधानिक अधिकार व कर्तव्यों से। वे इतने ग़रीब हैं कि जमानत कराने में उनके परिजनों के घर के बर्तन बिक जायेंगे। जुर्म मामूली..किसी से तू तू-मैं मैं या किसी से हाथापाई; किन्तु मात्र ग़रीबी और अज्ञानता के कारण जाने कितने बिना जमानत जेल में ज़िदगी गंवा रहे हैं। कोई पांच साल, कोई दस तो कोई 20 साल से जेलों में पड़े हैं।

बीते संविधान दिवस पर हमारी महामहिम राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू की यह वेदना प्रकट की। उन्होने सभा में उपस्थित न्यायधीशों और क़ानून मंत्री से यह अपेक्षा की कि वे ऐसे दरिद्रनारायणों को समय से और सस्ते में न्याय दिलाने के लिए कुछ करेंगे।

क्या इलाज कुछ, बीमारी कुछ और ?

कहने को कहा जा सकता है कि हमारी सरकारों ने किया तो है। लोक अदालत, फास्ट ट्रैक कोर्ट, मध्यस्थता केन्द्र, न्याय मित्र और प्रार्थी को सरकारी वकील मुहैया कराने के प्रावधान इसीलिए तो हैं। प्रश्न है कि तो फिर अदालतों में मुकदमों के अंबार क्यों लगे हुए हैं ? तारीख-पर-तारीख से ग़रीब ही नहीं, विभागों व विश्वविद्यालयों से लेकर कंपनियों के नुमाइंदे-कर्मचारी तक हैरान-परेशान हैं। खासकर, दीवानी मुक़दमों में फैसला पाने में पीड़ितों की एक पीढ़ी गुजर रही है। आखिर क्यों ? घरेलु उत्पीड़न, तलाक, बलात्कार, छेड़खानी आदि मामलों में क़ानूनी पेचिदगियां इतनी ज्यादा क्यों हैं कि फर्जी और सही मुक़दमें में भेद करना मुश्किल होता जा रहा है। दोषी और पीड़ित - दोनो ही सशंकित और प्रताड़ित रहते हैं कि फैसला आते-आते ऊंट जाने किस करवट बैठ जाए। उचित न्याय की गारंटी देना, खुद जजों के लिए भी मुश्किल हो गया लगता है। क्यों ?

क्या न्याय पंचायतें कम कर सकती हैं
राष्ट्रपति महोदया की वेदना ?
या
क्या न्याय पंचायतें पूरी कर सकती हैं
राष्ट्रपति महोदया की चाहत ?
या
राष्ट्रपति महोदया की चाहत और न्याय पंचायतें
या
क्या न्याय पंचायतें घटा सकती हैं मुक़दमों का बोझ ?
या
राष्ट्रपति की वेदना : कैसे मिले सस्ता-समुचित न्याय ??

स्पष्ट है कि बीमारी की जड़ कहीं और है। महामहिम राष्ट्रपति महोदया ने अपने संबोधन के अंत में कहा ही कि बाकी जो नहीं बोल रही हूं, उस चीज को आप समझिए। मेरे ख्याल में वह समझने की चीज यह है कि न्याय पाने की प्रक्रिया और अधिक मंहगी तथा भ्रष्ट

होती जा रही है। महामहिम राष्ट्रपति के अनुभवों में जिन टीचर, डॉक्टर और वकीलों को लोग भगवान मानते थे, आज उनके संस्थागत स्वरूप (प्राइवेट स्कूल, नर्सिंग होम और एडवोकेट फर्म) ही आमजन को लूट का सबसे आसान शिकार मानकर लूट रहे हैं। थाने में मामले की प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज कराने से ही दलाली और घूस की मांग शुरू हो जाती है। यह कैसे खत्म हो ? यह क्यों है कि पुख्ता व्यवस्था बनाने के नाम पर बनाया हर नया नियम व क़ानून दलाली व घूस के रेट बढ़ाने वाला साबित हो रहा है। क्या इसकी फिक्र किए बिना सस्ता-समीचीन न्याय संभव है ?

नीयत पर सवाल

जाहिर है कि मसला नीति से ज्यादा नीयत का है। तारीख लेने से लेकर दस्तावेज हासिल करने तक के लिए नजराना देना पड़ता है। जज भी जानते हैं; फिर भी यह चलन है कि टूटता नहीं। वकीलों की फीस है कि बढ़ती ही जा रही है। कोई लगाम नहीं। अब वे पीड़ित को पार्टी कहते हैं। ठेका करने लगे हैं। वकीलों का लक्ष्य पीड़ितों को न्याय दिलाना नहीं, उनसे अधिक से अधिक नकद वसूलना होता जा रहा है। लोगों का अपने वकीलों पर ही भरोसा नहीं। यह आम धारणा बनती जा रही है कि वादी-प्रतिवादी... दोनो के वकील आपस में मिले रहते हैं। आपस में मिलकर वे अपनी-अपनी 'पार्टी' को बेवकूफ बनाते रहते हैं। साधारण से लेकर हाई प्रोफाइल मुक़दमों तक में यह अनुभव सामने आये हैं। निचली अदालतों के वकीलों की आये दिन होने हड़तालें परेशानी

का सबब हैं ही। वकील सोचें कि उन पर भरोसा बहाली कैसे हो ?

जज और वकील - दोनो राजा हैं। इनसे कौन लड़े। बस, इसी एक भाव के चलते भारत की न्यायिक व्यवस्था में सुधार प्रक्रिया सुस्त पड़ी है। इस भाव को बदलना होगा। कैसे ? गंभीर मंथन और प्रभावी क्रियान्वयन ज़रूरी है।

प्राथमिकता बदलने की ज़रूरत

आइए, अब आइने को दूसरी तरफ घुमायें। कहने को हम विकास कर रहे हैं। न्याय हासिल करने की दृष्टि से विकास का मतलब है कि व्यवस्था ऐसी हो कि अन्याय करने वाला हिम्मत ही न करे। हमारा नैतिक मनोबल इतना ऊंचा हो कि अन्याय करना, खुद को पाप करने जैसा लगे। प्राथमिकता तो यह होनी चाहिए कि विवाद हों ही नहीं। विवाद हों तो आपसी समझाइश से ही खत्म हो जाए। हम थाने तक जाएं ही नहीं। मुक़दमा करने की नौबत ही न आये। मुक़दमें कम से कम हों। मुक़दमा तभी दर्ज किया जाए, जब कोई और चारा न हो। मुक़दमे दर्ज हों तो उनका निष्पादन यथाशीघ्र हो। थाना-पुलिस-कचहरी के अधिकारों की सीमा और अपनी सामर्थ्य के प्रति पर्याप्त जन-जागरूकता इसमें मददगार हो सकती है। किन्तु भारत में लागू की जा रही नीतियों का जोर इन सब पर नहीं है। राष्ट्रपति महोदया ने भी ताज्जुब व्यक्त किया कि हमारा जोर और अधिक जेल बनाने पर है।

क्या यह सच नहीं कि हम ग्राम से लेकर राज्य तक सब जगह अधिक से अधिक न्यायालय तो बनाना चाहते हैं, लेकिन समझाइश के लिए दबाव व प्रोत्साहन को प्राथमिकता पर लाना

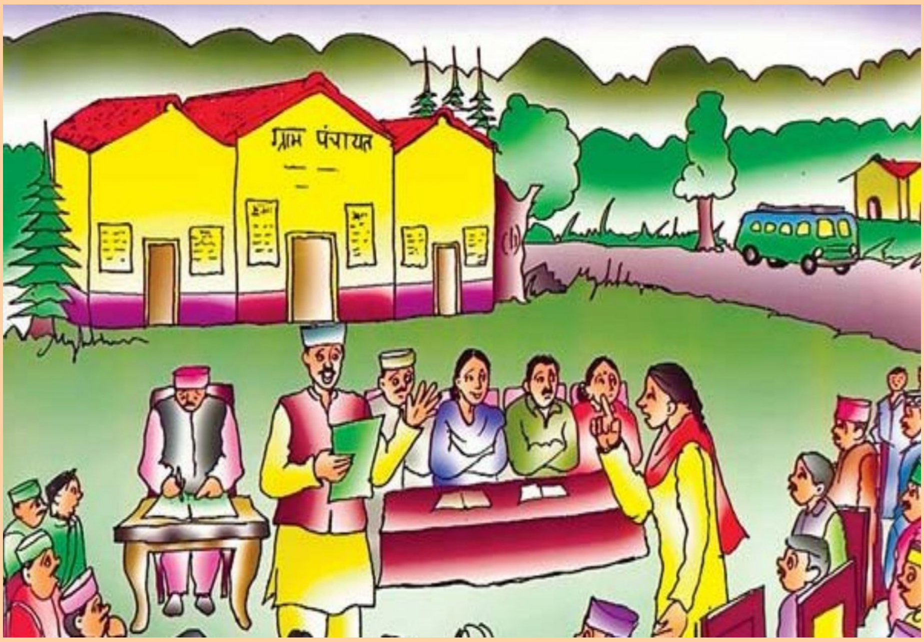

नहीं चाहते ? आइए, सोचें कि प्राथमिकता बदलने का कार्य कैसे हो ?

एक कारण : टूटता ताना-बाना

हम जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता की सरकार हैं। इस संदर्भ में बकौल महामहिम - न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका को कहीं-कहीं एक सोच का होना चाहिए। किंतु जनता के हित में कहीं ऐसी 'एक सोच' का प्रदर्शन हो रहा है ? नहीं, मामलों को स्थानीय स्तर पर सुलझा लेने की जो व्यवस्थायें पहले से सुचारू रूप से काम रह रही थीं, सरकारी नीतियां व निर्णय जाने-अनजाने उन्हे कमज़ोर ही कर रहे हैं।

सोचकर देखिए कि सशक्तिकरण के नाम पर हमने लिंग, जाति व अन्य वर्ग आधारित विभेद व विवादों को बढ़ाया है या उसमें घटोत्तरी की है ? गांव हो या शहर, हमारी दलगत् राजनीति और निजी महत्वाकांक्षाओं ने स्थानीय सामुदायिक ताने-बाने में इतने सारे छेद कर दिए हैं कि हम पर निजता बुरी तरह हावी हो गई है। पड़ोसी पर होते अन्याय को भी हम उसका निजी मामला कहकर पल्ला झाड़ने लगे हैं। क़ानून के रखवालों की नीयत पर भरोसा इस कदर उठ गया है कि इस कारण भी कोई किसी के मामले में पड़ने से बचना चाहता है। आज हम ऐसे घर, समुदाय व समाज हैं, जिनमें बुज़ुर्गों का इकबाल घटता जा रहा है। ऐसे में प्राथमिक स्तर पर समझाइश का काम कौन करे ? दुःखद है कि जो सस्ते-सुलभ न्याय की प्रतीक्षा में हैं, उनमें व्याप्त विभेद ही विवादों को सबसे ज्यादा जन्म दे रहे हैं। खंगाले तो शायद सबसे ज्यादा मुक़दमें 'मैं बड़ा कि तू बड़ा' की देन दिखाई देंगे।

क्या यू टर्न से बनेगी बात ?

कहना न होगा कि सामुदायिक की जगह निजी की तेज़ी से बढ़ती प्रवृति एक ऐसा पहलू है, जिस पर यू टर्न ज़रूरी है। सामुदायिक भाव की समृद्धि हासिल किए बगैर विवादों की संख्या में घटोत्तरी असंभव है। निस्संदेह, "मैं नहीं, हम" का पारिवारिक व सामुदायिक संस्कार, इस दिशा में पहला कदम हो सकता है। किन्तु यहां यह भी सच है कि चुनावों को दलगत् राजनीति की छाया व छाप से पूरी तरह से मुक्त किए बगैर सामुदायिक ताने-बाने में बढ़ते छेदों को छोटा करना असंभव है। लिहाजा, इस दिशा में संवैधानिक पहल ज़रूरी है। पंचायत और नगर निगम/पालिका चुनावों से शुरुआत की जा सकती है। क्या हमारी संसद व राज्यों की विधायिका यह करेंगी ?? हमारी ग्राम सभा व वार्ड सभा चाहें तो वे भी दलगत् छाया व छाप वाले प्रत्याशियों का बहिष्कार सुनिश्चित कर सकती हैं।

एक माध्यम: न्याय पंचायतें

यदि हम स्थानीय स्तर पर समझाइश की बात करें तो यहां पहले से जारी एक अचूक व्यवस्था को फिर से पुनर्स्थापित करना होगा। याद कीजिए कि नगरों में मोहल्ला निवासी संगठन तो गांवों में न्याय पंचायतें, विवाद सुलझाने व न्याय हासिल करने के सबसे सस्ते-सुलभ संस्थान रहे हैं। समझाइश से समाधान - न्याय पंचायतों के अस्तित्व का तो मूल ही यही है। किन्तु क्या भारत की कितनी राज्य सरकारें इन्हे तवज्जो दे रही हैं ? कितने राज्य पंचायती राज अधिनियमों में न्याय पंचायतों के गठन के प्रावधान हैं ? न्याय पंचायतों को सक्षम बनाने के लिए कितनी राज्य सरकारों ने कदम उठाये हैं ??

उलट प्रवृति यह है कि उत्तर प्रदेश की योगी कैबिनेट ने तो न्याय पंचायतों को तो जड़ से ही खत्म कर दिया है। योगी कैबिनेट अपने पहले

ही कार्यकाल में यह कारनामा कर दिखाया। विधान परिषद ने मंजूरी नहीं दी। प्रवर समिति की रिपोर्ट भी न्याय पंचायतों को खत्म करने के पक्ष में नहीं थी; बावजूद इसके यह निर्णय लिया गया। वह भी इस तर्क के साथ कि न्याय पंचायतें अप्रासंगिक व अव्यावहारिक हैं ! न्याय पंचायतों के सरपंच व सदस्य न्याय करने में सक्षम नहीं हैं !!

यह कहना कितना हास्यास्पद है कि जो गांव वाले अपना विधायक और सांसद चुनने में सक्षम हैं, वे अपने स्तर के साधारण विवाद सुलझाने में सक्षम नहीं हैं !! तथ्य यह भी है कि ऊपर की अदालतों पर बढ़ते बोझ को कम करने के लिए भारतीय न्याय आयोग ने अपनी 114वीं रिपोर्ट में ग्राम न्यायालयों की स्थापना की सिफारिश की थी। सिफारिश को लेकर विशेषज्ञों के एक वर्ग की यह राय थी कि ग्राम न्यायालयों के रूप में एक और खर्चीले ढांचे को अस्तित्व में लाने से बेहतर है कि न्याय पंचायतों के ढांचे को सभी राज्यों में अस्तित्व में लाने तथा मौजूदा न्याय पंचायतों को और अधिक सक्षम बनाने की दिशा में पहल हो।

असर बताते आंकड़े

आंकड़े बताते हैं कि जिन राज्यों में न्याय पंचायत व्यवस्था सक्रिय रूप से अस्तित्व में है, कुल लंबित मुक़दमों की संख्या में उनका हिस्सेदारी प्रतिशत अन्य राज्यों की तुलना काफी कम है। उदाहरण के तौर पर भारत में लंबित मुक़दमों की कुल संख्या में बिहार की हिस्सेदारी मात्र छह प्रतिशत है। इसकी वजह यह है कि बिहार में न्याय पंचायत व्यवस्था काफी सक्रिय हैं। बिहार में न्याय पंचायतों को 'ग्राम कचहरी' नाम दिया गया है। ग्राम कचहरियों में आने वाले 90 प्रतिशत विवाद आपसी समझौतों के जरिए हल होने का औसत है। शेष 10 प्रतिशत में आर्थिक दण्ड का फैसला सामने आया है। इसमें से भी मात्र दो प्रतिशत विवाद ऐसे होते हैं, जिन्हे वादी-प्रतिवादी ऊपर की अदालतों में ले जाते हैं। सक्रिय न्याय पंचायती व्यवस्था वाला दूसरा राज्य - हिमाचल प्रदेश है। ग्रामीण एवम् औद्योगिक विकास शोध केन्द्र की अध्ययन रिपोर्ट - 2011 खुलासा करती है कि हिमाचल प्रदेश की न्याय पंचायतों में आये विवाद सौ फीसदी न्याय पंचायत स्तर पर ही हल हुए। न्याय पंचायतों के विवाद निपटारे की गति देखिए। अध्ययन कहता है कि 16 प्रतिशत विवादों का निपटारा तत्काल हुआ; 32 प्रतिशत का दो से तीन दिन में और 29 प्रतिशत का निपटारा एक सप्ताह से 15 दिन में हो गया। इस प्रकार मात्र 24 प्रतिशत विवाद ही ऐसे पाये गये, जिनका निपटारा करने में न्याय पंचायतों को 15 दिन से अधिक लगे।

उक्त अध्ययनों से समझा जा सकता है कि भारत में कुल लंबित मुक़दमों में यदि अकेले उत्तर प्रदेश की हिस्सेदारी 24 प्रतिशत है तो इसकी सबसे खास वजह कभी उत्तर प्रदेश पंचायतीराज अधिनियम में न्याय पंचायतों का प्रावधान होने के बावजूद उ.प्र. में न्याय पंचायतों के गठन का न किया जाना रहा है।

ये अध्ययन इस तथ्य को भी तसदीक करते हैं कि न्याय पंचायत ही वह व्यवस्था है, जो अदालतों के सिर पर सवार मुक़दमों का बोझ कम सकती है। भारत की ज्यादातर आबादी ग्रामीण है। फैसला हासिल करने में लगने वाली लंबी अवधि तथा मुक़दमों के खर्चे गांव की जेब ढीली करने और सद्भाव बिगाड़ने वाले सिद्व हो रहे हैं। इसके विपरीत न्यायपीठ तक याची की आसान पहुंच, शून्य खर्च, त्वरित न्याय, सद्भाव बिगाड़े बगैर न्याय तथा बिना वकील न्याय की खूबी के कारण न्याय पंचायतें गांव के लिए ज्यादा ज़रूरी और उपयोगी न्याय व्यवस्था साबित हो सकती हैं। आज न्याय पंचायतों के पास कुछ खास धाराओं के तहत् सिविल और क्रिमिनल... दोनो तरह विवादों पर फैसला सुनाने का हक़ है। अलग-अलग राज्य में न्याय पंचायत के दायरे में शामिल धाराओं की संख्या अलग-अलग है, जिन पर विचार कर और अधिक सार्थक बनाया जा सकता है।

कृपया गांव सरकारों को लौटायें उनकी न्यायपालिका

संविधान की धारा 40 ने एक अलग प्रावधान कर राज्यों को मौका दिया कि वे चाहें तो न्याय पंचायतों का औपचारिक गठन कर सकते हैं। धारा 39 ए ने इसे और स्पष्ट किया। 'सकते हैं' - हालांकि इन दो शब्दों के कारण न्याय पंचायतों के गठन का मामला राज्यों के विवेक पर छोड़ने की एक भारी भूल हो गई। परिणाम यह हुआ कि भारत के आठ राज्यों ने तो अपने राज्य पंचायतीराज अधिनियम में न्याय पंचायतों का प्रावधान किया, किंतु शेष भाग निकले। न्याय पंचायतों की वर्तमान सफलता को देखते हुए क्या यह उचित नहीं होगा कि या तो भारत के सभी राज्य अपने पंचायतीराज अधिनियमों में न्याय पंचायतों का प्रावधान करें अथवा संसद उक्त दो शब्दों की गलती सुधारें। गांव सरकारों को इनकी न्यायपालिका से वंचित क्यों रखा जा रहा है ? ठीक भी है कि यदि भारतीय संविधान ने पंचायत को 'सेल्फ गवर्नमेंट' यानी 'अपनी सरकार' का दर्जा दिया है, तो पंचायत के पास अपनी न्यायपालिका और कार्यपालिका भी होनी चाहिए।

बतौर राष्ट्रपति पद उम्मीदवार, द्रौपदी मुर्मू जी, भारतीय जनता पार्टी की पहली पसंद थी। भारतीय जनता पार्टी के विचारकों को राष्ट्रपति महोदया की वेदना की तनिक भर चिंता हो तो उन्हे उत्तर प्रदेश सरकार को बाध्य करना चाहिए कि वह न्याय पंचायतों को पुनर्स्थापित करके उनके गठन की दिशा में कदम बढ़ाये। इसके लिए राज्य सरकार चलाने वाले भी संकल्पित हों, सेल्फ गवर्नमेंट' चलाने वाले भी और संविधान दिवस पर महंगी व दीर्घावधि न्यायिक प्रक्रिया की बाबत महामहिम राष्ट्रपति महोदया की वेदना सुनने वाले न्यायधीश गण भी।

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

डा. रामशंकर भारती

लोक-परंपरा में फागुन

हमारे यहाँ ऋतु पर्व जीवन की व्यापकता निर्मित करने के उद्देश्य से संचित हैं। इन्हीं ऋतु पर्वों के माध्यम से मनुष्य की संवेदनाओं को व्यापकता मिलती है , उसका सौंदर्यबोध परिष्कृत होता है और नैतिक वृत्ति पवित्र होती है। प्रकारांतर से ऋतु पर्व सांस्कृतिक चेतना को अनुप्राणित – विकसित और मार्जित करने का सर्वोत्तम माध्यम है। भारतीय संस्कृति के मूल में यहाँ के लोकपर्वों, लोकोत्सवों की एक विराट परंपरा समाहित है। संस्कृति को जानने के लिए मनुष्य ने चिरकाल से प्रकृति से अपने संबंध स्थापित किये हैं । क्योंकि प्रकृति अंतश्चेतना की अनुभूति होती है जिससे आत्मा में आनंद और तन्मयता उत्पन्न होती है।

जब प्रकृति हँसती है तो समूचा संसार हंसता है। इसी हँसने और हँसाने का नाम है वसंत। यह वसंत दुंदुभी बजाकर भी आता है और चुपके से भी । वसंत के आने की आहट

प्रकृति रूपसी का श्रृंगार कर लेना भर नहीं है बल्कि श्रंगार को जीना है, उसे आत्मसात करना है । आम्र मंजरी की मादक गंध, मधमाती - इतराती सुरभित हवाएँ , ठहरती - बहती नदी की चंचल धाराएँ , बहुरंगी - बहुवर्णी पुष्प - गुल्म, प्रेमातुर विटप - लताएँ , नव कोपल - नव पात - पल्लव – हरीतिमा , मधुकर का गुंजार, कोयल की कूक , पक्षियों के कलरव, वन -प्रांतर में विहँसते पलाश, मुसकाते किशंकु के फूल, खुशबूओं के उड़ते बादल, घूँघट से झाँकता चाँद, हथेली की मेहंदी, पाँव का महावर, लहलहाते सरसों - अलसी के खेत, गेहूँ की गदरायीं बालियाँ , अरहर की झुक - झुक जाती डालियाँ और फगुनाहट से बौराया मन जब हँसता है तब वसंत साकार होता है। वसंत का यों साकार होना, सप्राण - सवाक् होना ही जीवन की जीवंतता है। वस्तुतः जीवन की यही जीवंतता ही वसंत है। वरना ' बस - अंत' है। जीवन के जितने भी पक्ष हैं, संदर्भ हैं उन सभी को नवीन ऊर्जा से ओतप्रोत करता है वसंत। चतुर्दिक पूर्णता ही दृष्टिगोचर होती है। कहीं भी कोई अपूर्ण नहीं, कोई रिक्त नहीं, कोई अतृप्त नहीं। सभी संतुष्ट हों, सभी तृप्त हों याने व्यष्टि से लेकर समष्टि में संपूर्णता भर देता है वसंत। वसंत का अर्थ - रिक्तता नहीं, पूर्णता

है। जड़ता नहीं, सजीवता है। द्वेष नहीं, राग है वसंत। क्षण भंगुरता नहीं, शाश्वतता है वसंत । वासना नहीं, प्रेम है वसंत । सच में सृष्टि और सर्जन के मध्य सेतु का कार्य यही वसंत करता है। यही अभीष्ट भी है वसंत और फागुन का ।

सौंदर्य प्रकृति का प्राण तत्व है । हम उसे फूलों की तरह खिलने दें, अपने मन को उसकी सोंधी सुगंध से भरने दें, अपने कानों में वह स्वर पहुँचने दें जो अपने भीतर - भीतर प्यार की उष्मा लेकर आना चाहता है। हम अपनी आँखों में उसका आकाश छा जाने दें, जहाँ जिंदगी अपने पंख खोल कर उड़ रही होती है। हम रोम - रोम उस स्पर्श से भर जाने दें जो हमें पारस बनाए रखने को आकुल है। बस इसी अकुलाहट का नाम है फागुन। जो रीतने नहीं देता है, छूटने नहीं देता है, टूटने भी नहीं देता है। परिपूर्ण बनाए रखना फागुन की अपनी विवशता है और विशेषता भी । फागुन को उत्पाती कहा गया है। किंतु फागुन का जो उत्पात है वह पीड़ा से मुक्ति देने वाला है, ठूँठ में भी नई आकांक्षाओं के किसलय उगाना फागुन का ही सृजन धर्म है। आग लगाने का जो मीठा आक्रोश है, उसमें प्रेमसिंधु हहरा रहा है।

वसंत आगमन की अनूठी कथा

भारतीय पंचाग ने वर्ष के अहोरात्र को बारह मासों में विभक्त किया है। चैत्र मास वर्ष का प्रथम मास है और फाल्गुन अंतिम । चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, आगहन, पौष, माघ और फाल्गुन इन बारह मासों में छैः ऋतुओं का समावेश है। इन छः ऋतुओं का द्विमासिक विभाजन भी इस प्रकार है - वसंत (चैत्र - वैशाख) ग्रीष्म (ज्येष्ठ - आषाढ़) वर्षा (श्रावण - भाद्रपद) शरद (आश्विन – कार्तिक) हेमंत (आगहण- पौष) शिशिर (माघ -फाल्गुन)।

ऋतुचक्र के अनुसार वसंत ऋतु का आगमन तो मधु – माधव (चैत्र - वैशाख) मास से होता है । किंतु वसंत ऋतुराज जो ठहरा , राजा है , सो वह बेरोकटोक माघ में ही आ धमकता है। आम्र की मादक मंजरियों , अशोक के रक्त किसलयों और पुष्पों के साथ सर्जनलोक की देवि माँ सरस्वती के महाअवतरण पर्व " श्रीपंचमी " के स्वागत - सत्कार में अपने संपूर्ण वैभव को न्योछावर करने आ जाता है। माँ सरस्वती कृपा से से ही उसका अवतरण होता है। इसलिए श्रीपंचमी को ' वसंत पंचमी ' के नाम से जग – प्रसिद्धि मिली है । ऐसी कविमान्यता है या कविसिद्धि है कि अशोक वृक्ष वसंत पंचमी के दिन सुंदर तरुणियों के आलता रचे (आलक्तक) - रंजित महावर - रंगे झुनझुनाते नूपरों वाले चरणों के प्रहार से पुष्पित हो उठता है। किंतु एक सत्य यह भी है कि " कुमारसंभवम " के अनुसार भगवान शिव का तप भंग करने के लिए कामदेव द्वारा असमय में उपस्थित किए गए वसंतकाल में तो अशोक अपने कोमल किसलयों के साथ विभिन्न ऋतु गंध लेकर उपस्थित हो गया था और नवयौवनाओं के चरणताड़न के बिना ही फूलने लगा था। महाकवि कालिदास जी के सौंदर्यबोधी शब्दों में देखें –

असूतसद्यः कुसुमान्यशोकः स्कन्धात्
प्रभृत्येव सपल्लवानि।
पादेन् नपैक्षत सुंदरीणां सम्पर्कमासिञ्जत –
नूपरेण ।।

पौराणिक काल में वसंत का पर्व मदनोत्सव और कामोत्सव के नाम से सोल्लास मनाए जाने की परंपराएँ रहीं है। यह दिन काम के अशरीरी देवता कामदेव के पूजन का भी दिन है । अशरीरी होने के कारण कामदेव को

अनुराग में रंगे पलाश का रोम - रोम हँस उठता है।

ब्रजभाषा में ' केसु 'और खड़ीबोली में ' टेसू ' इसीके तद्भव रूप में प्रयोग होते हैं। प्रकृति प्रेमी कवियों ने को किंशुक बड़े ही आकर्षक और कामोद्दीपक प्रतीत होते हैं कालिदास ने उन्हें आग की लपटों में उपमित किया है तो गीतगोविन्द के रचयिता महाकवि जयदेव ने किंशुक के फूलों को कामदेव के पैने नाखूनों से उपमा दी है जो युवाओं के हृदयों को विदीर्ण करते हैं –

"युवजन हृदय -विदारण-मनसिज नखरुचि किंशुक-जाले

पद्मावत के रचनाकार सूफी महाकवि मलिक मुहम्मद जायसी का मानना है कि कुसुमधन्वा कामदेव के तीखे तीरों से विद्ध विरहीन जनों के क्षत - विक्षत अंगों से जो रक्त की धारा निकली है उसी में डूबकर वनस्पतियों के पल्लव और पलाश के पुष्प लाल हो उठे हैं –

पंचम विरह पंच सर गारै।
रकत रोइ सगरो वन ढारै।।
बूड़ि उठे सब तरुवर पाता। भींजि मजीठ टेसू वन राता।।

सेनापति जी की बात भी सुन लीजिए : वे कह रहे हैं –
किंशुकों के वृन्तों से जुड़ी घुण्डियाँ श्यामवर्ण

अनंग भी कहा गया है। पौराणिक कथाओं में कामदेव के धनुष के विषय में कहा गया है कि ...कामदेव का धनुष गन्ने का बना है जिस पर मधुमक्खियों के शहद की डोरी लगी है। वह निःशब्द मारक प्रहार करता है। जिन पञ्चसर अर्थात् पाँच बाणों से कामदेव ने शिवजी की समाधि भंग की थी उनके नाम हैं - अशोक पुष्प, आम्रमञ्जरी, अरविंद (श्वेत कमल) नवमालिका (चमेली के पुष्प) और नीलोत्पल। इन बाणों के दूसरे प्रतीकात्मक नाम भी विचित्र हैं –
मारण, स्तंभन, जृम्भन , शोषण, मन्मथन (उन्मादन)। कामदेव - वसंत - प्रेम त्रिगुणात्मक है और त्रिगुणातीत भी।

प्रपंची पलाश

यह पलाश भी बड़ा प्रपंची है। इसे ही टेसू , ढाक और किंशुक कहते हैं। ' ढाक के तीन पात ' वाली कहावत की भी अद्भुत लीला है। इसकी तीन पत्तियों का समूह सदैव इकट्ठा रहता है, एक साथ रहता है और हर स्थिति में समान रहता है, एकसंग रहता है , एकरस रहता है। इसीलिए इसे 'ढाक के तीन पात' कहा जाता है। यहाँ थोड़ी - सी चर्चा 'किंशुक' नामकरण की भी करना लाजिमी है। टेसू के फूलों को किंशुक कहा जाता है। आप इसके फूलों के ऊपरी भाग को गौर से निहारिए - अवलोकन कीजिए... तो आपको शुक (तोता) की लाल चोंच - सी दिखाई देती है। इसीलिए टेसू के फूल का एक नाम 'किंशुक' पड़ा।

पतझड़ में मृतप्रायः से सूखी लगने वाली इस की शाखाओं में लाल - गुलाबी रंगों के पुष्प – गुच्छों में जैसे नवजीवन फूट पड़ता है। यह आपाद - मस्तक मनभावन सुमनों से लद जाता है। जिसके प्रेम में ,

की होती हैं-
जिन पर लाल - लाल पंखुड़ियाँ ऐसे शोभायमान लगती हैं जैसे किंशुकों को काले रंग में रंग कर लाल स्याही में डुबो दिया गया हो -

लाल - लाल केसू फूलि रहे हैं बिसाल संग
स्याम रंग भेंटि मानो मसि में मिलाए हैं।

नीचे से काले और ऊपर से लाल किंशुकों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो विरहीजनों को जलाने के लिए कामदेव ने ढेर सारे कोयले प्रज्ज्वलित कर लिए हैं , जो आधे तो सुलगकर दहकने लगे हैं और आधे अभी सुलग नहीं पाए हैं –

आधे अनसुलगि सुलगि रहे आधे मानो
विरहीदहन काम क्वैला परचाये हैं।।

नीचे के घुंडीवाले काले हिस्से की बिना सुलगे कोयले से और ऊपर के लाल दलों की दहकते अंगारों से उत्प्रेक्षा कितनी अनूठी बन पड़ी है ! कहीं ये कोयले पूरी तरह प्रज्ज्वलित हो उठे , तो बेचारे विरहणियों का क्या होगा...? ब्रजांगनाएँ अपने प्रियतम कृष्ण को मथुरा नगर से ब्रज की जन्मभूमि में लौट आने के लिए इन्हीं मादक रक्त पुष्पों के पुष्पित हो जाने के समाचार को अंतिम और अचूक संदेश के रूप में उद्धव के द्वारा प्रेषित करतीं हैं –

ऊधौ ! यह सूधौ सो सँदेशो कहि दीजे भलो ,
हमारे ह्याँ नाहिं फूले बन कुंज हैं।
किंसुक, गुलाब, कचनार और अनारन की,
डारन पै डोलत अंगारन के पुंज हैं।।

धन्य हैं बुंदेलखण्डवासी सुकवि पद्माकरजी जी की लेखनी को।

बेचारा महुआ !

वसंत के संदर्भ में कवियों ने अपनी मादक गंध से कोकिल को मद विह्वल कर सुरीली तान छोड़ने के लिए विवस कर देने वाली आम - मंजरियों की महिमा गाई है, लाल पुष्पों से लदे पलाश, अशोक और करणिकार ने उनकी दृष्टि को लुभाया है, मुग्ध किया है ....किंतु एक वृक्ष है बेचारा महुआ उसकी और लोगों को कम ध्यान गया है। चलिए इस वृक्ष की थोड़ी - सी चर्चा करता हूँ। यह जंगली वृक्ष मधूक के नाम से जाना जाता है । आदिवासियों - वनवासियों और गिरिवासियों की यह संपत्ति है। मधूक का वृक्ष ही महुआ कहलाता है। मधूक के फूल को ही महुआ कहते हैं ।यह मधुर रस से लबालब भरे होते हैं।इनसे मदिरा बनाई जाती है जो वनवासियों की भोजन की भी आपूर्ति करती है। महुए की मदिर गंध समूचे वन प्रदेश को मादकता से भर देती है। चैत्र मास के दिनों में भिनसारे --सवेरे - सवेरे महुए के फूल प्रचुर मात्रा में झर कर पेड़ों के नीचे की भूमि को ढक देते हैं और जैसे सूर्य उदय होता है वनवासी महिलाएँ और बच्चे इन हल्के पीले फूलों को बीन कर टोकरियों में भरकर घर ले जाते हैं। महुओं के फूलते ही सतपुड़ा के प्रकृतिजीवी वनवासियों का सहज उल्लास समूह – नृत्य सामूहिक गायन और प्रकृति पर्व मनाने का उनका उत्साह- उमंग फूट - फूट पड़ता है। हमारे भवानी भाई अर्थात कवि भवानी प्रसाद मिश्र प्रकृति संरक्षक रहे - प्रकृति प्रेमी रहे उन्होंने महुए को लेकर बहुत सुंदर चित्र खींचा है। उनकी कविता को हम यहाँ देखते हैं -

इन वनों के खूब भीतर चार मुर्गे चार

तीतर

पालकर निश्चिंत बैठे विजिन वन के मध्य पैठे

झोपड़ी पर फूस डाले गोंड तगड़े और काले

जबकि होली पास आती सरसराती घास गाती

और वैसे लपकती मत्त करती वास आती

गूँज उठते ढोल इनके , गीत इनके बोल इनके

सतपुड़ा के घने जंगल ! ऊँघते अनमने जंगल।

भवानी भाई ने सतपुड़ा के जंगलों के चित्र और वहाँ के आदिवासियों के जीवन का जीवंत चित्रण दोनों ही बड़े अनूठे ढंग से प्रस्तुत किया है।

हमारे भारतीय साहित्य में ऋतु पर्वों की अत्यंत विस्तार से चर्चा की गयी है। फिर वसंत तो ऋतुराज ठहरा उस पर संस्कृत के साहित्याचार्यों से लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओं और बोलियों में हमारे कवियों - लेखकों ने अपनी - अपनी आँख से वसंत को देखा है। आइए उन महाकवियों की आँखों से देखे हुए वसंत को हम अपनी वासंतिक आँखों से देखते हैं -

महाकवि रसिक विहारी की दृष्टि में वसंत तो वसुंधरा के कण - कण को दीप्ति की सिद्धि देना वाला अनुष्ठान है

बेलन बसंत ज्यों नबेलिन बसंत
वन बागन रंगरागन वसंत है।

कुंजन वसंत दिग्पुंजन वसंत
अलिगुँजन वसंत चहूँ ओरन वसंत है।।
छैलन वसंत अरु फैलन वसंत
संग सैलन वसंत बहु गैलन वसंत है।।
रसिक बिहारी नैन सैनन में बैनन में
जितै अबलोकत तितै बरसै वसंत है।।

हम सभी उत्सव धर्मी संस्कृति के संवाहक हैं। उत्सव भारतीय लोकजीवन की आधारशिलाएँ हैं । लोकजीवन को मंगल प्रदान करते हैं । शस्य श्यामला भारत माता - धरती माता अन्नभंडार हमें देती है । ग्राम देवता जो कृषक हैं तथा उसके परिवार के अन्य सदस्य फसल पकने व कूटने के समय झूम - झूम कर कैसे आनंदित होकर गाते हैं। भोजपुरी में एक चित्र देखिए –

गेंहुआँ कटै चारउ ओर कै झूम झूम नाचै किसनवां
मनवां उठैला हिलोर कै झूम झूम नाचै किसनवां
नदिया किनारे कोयलिया पुकारे
पापी पिरतिया सुरतिया निहारे
भाग चलै अँगनवा की ओर कै झूम झूम नाचै किसनवां

सुमनों के हार लेकर वे सज - धजकर स्वागत के लिए प्रस्तुत हैं । कोकिल पंचम स्वर में प्रशस्ति गीत गा रहा है.... गुंजारते मधुकर मंत्रोचार कर रहे हैं, शीतल मंद सुगंध पवन पंखा झलते हुए चल रहा है । चहचहाते पक्षियों की जयध्वनि से आकाश मुखर हो रहा है क्योंकि ऋतुराज वसंत अपने सहचर कुसुमायुध कामदेव के साथ पदार्पण कर रहा है। सूर्य के उत्तरायण होते ही रश्मियों में - किरणों में सुखद उष्णता गई है , प्रकृति के कण-कण से और वृक्ष-वल्लरियों के पोर - पोर से अल्हड़ यौवन की आह्लादक - मादकता छलक पड़ रही है , जिसके प्रभाव से सभी चेतन प्राणी मधुविह्वल हो उठे हैं .. धवल चंद्र के के भार से बोझिल पवन धीरे - धीरे चल रहा है -

चाँदनी के भारन दिखात उनयो - सो चंद

गंध ही भारन बहत मंद - मंद पौन ।

वसंत के अग्रदूत और हिंदी साहित्य के शिखर पुरुष मां भारती के लाड़ले महाप्राण निराला कहते हैं -

लता - मुकुल - हार गंध - भार भर

वही पवन मंद – मंदतर

जागी नयनों में वन - यौवन की माया

सखि ! वसंत आया ।

अमवाँ के पेड़ झमाझम झमकै

गोरी की बिंदिया चमाचम चमकै

खुल खुल जायै कंगनवां कै झूम झूम नाचै किसनवां

ऐसे कदँबबा पै लल चौराए

दूजै सरसों के फूल बौराए

बेला महके अँगनवां कै झूम झूम नाचै किसनवां

यह जो लोक रस है, लोक चेतना है, लोक अनुभूति है यही आनंद का आंतरिक अतिरेक है । जब तक अंतःकरण अनुभूति के झरोखों के कपाट बंद रहेंगे तब तक वसंत उदास ही रहेगा। वसंत की अकूत संपदा का भोग वही कर सकता है जिसमें प्रकृति से जुड़ने की असीम अकुलाहट है। केवल घरों में गुलदान सजाने से वसंत को साकार नहीं किया जा सकता । वसंत को यदि सच में साकार करना है तो हमें सर्जन से जुड़ना होगा, प्रकृति से जुड़ना होगा। तभी वसंत सृजन का पर्व बनेगा । संसार में विशाल प्रकृति, पेड़ - पौधे - वनस्पतियाँ, ऊँचे पर्वत , गहरा सागर, अनंत आकाश, लहरातीं नदियाँ, मनमोहक झरने, रंग - बिरंगे फूल और-न जाने कितने प्रकृति के विचित्र चित्र हैं, चरित्र हैं रूप हैं, अनूप हैं सभी एक स्वर में, एक लय में एक ही संदेश देते हैं कि अपने मन को पवित्र करो और ऐसा लोक कार्य करो जो शिव की स्थापना के लिए समर्पित हो। लोकमंगलकारी हो। वसंत यही संदेश लेकर आता है हमारे द्वारे पर - फागुन की देहरी पर।

शिशिर के पतझार से अपर्णा हुई वनस्पतियों का तप पूर्ण हुआ। रक्त किसलयों में उनका यौवन और प्रस्फुटित पुष्पों में उनके हृदय का सहज उल्लास फूट पड़ा है। सुरभित

कितनी उदात्त कल्पना है - वसंत में रात और दिन का परिणाम बराबर हो जाता है । शरीर के शीत का प्रकोप शांत हो जाता है और गर्मी का प्रारंभ न हो पाने से वसंत ऋतु सर्वाधिक सुखद होती है । वसंत ऋतुराज हो जाता है। यह यौवन का, सौंदर्य का, आकर्षण का , आह्लादिकता का प्रेयस पर्याय है ।

महाकवि कालिदास ऋतुसंहार में कहते हैं जब वसंत आता है तो वृक्ष पुष्पित होकर वातावरण में अपनी हँसी और सुगंध बिखेरने लगते हैं ...सरोवरों में कमल खिल जाते हैं ..नवयुवतियों का यौवन उफान लेने लगता है .... वायु सुवासित हो जाती है ...शीत का प्रभाव कम पड़ने से सन्ध्याकाल सुखकर हो जाते हैं और दिन सुखद लगने लगते हैं । इस प्रकार वसंत में सब कुछ चारु से चारुतर हो जाता है सुंदरतम् हो जाता है । संस्कृत के महाकवि कालिदास अपने ऋतुसंहार में वसंत ऋतु का वर्णन बड़े विचित्र शब्दों में करते हैं –

द्रुमाः सपुष्पाः सलिलं सपद्मं

स्त्रियः सकामाः पवनः सुगन्धिः

सुखा प्रदोषा दिवसाश्च रम्याः

सर्वे प्रिये चारुतरं वसंते।

रीतिकालीन कवि पद्माकर के अनुसार भौरों की गुंजन में पहले की अपेक्षा कुछ अधिक मादक विशिष्टता आ जाती है । तरुणों के अल्हड़ यौवन उमड़ने - उड़ने लगता है और पक्षियों के कलरव में भी विशेष मादक मिठास भर जाती है। चलिए हम पद्माकर जी के बसंत को यहाँ ज्यों का त्यों उतारने की कोशिश कतते हैं –

औरे भौतिक कुंजन में गुंजरित भौंर - भीर

औरे डौर झौरन में बौरन के ह्वै गए।

कहें पदमाकर सु औरे भांति गलियान,

छलिया छबीले छैल औरे छबि छवै गए।।

औरे भाँति बिहँग समाज में अवाज होति,

अबै ऋतुराज के न आज दिन दवै गए।

औरे रस, औरे रीति ,औरे राग , औरे रंग ,

औरे तन औरे मन औरे वन ह्वै गए।

श्रंगारी कवि हमारे बिहारीदास जी ने वसंत को लेकर बड़ी अनूठी बात कहदी है। मदिर गंधभार से अलसाए कुंज समीर को मतवाले हाथी के रूप में ने प्रस्तुत किया है ।गुंजार करती भ्रमर पंक्ति जिसके गले में टुनुन - टुनुन करतीं घण्टियाँ है और जिसके कपोलों से पुष्पों का रस मधुरूपी जल बनकर चू रहा है। ऐसी विलक्षण कल्पना महाकवि बिहारी ही कर सकते हैं –

रनित भृंग घंटावली झरतत दान मधुनीर ।

मंद - मंद आवत चल्यो कुंजर कुंज समीर।।

इसी प्रकार कविवर देव ने वसंत की महाराज कामदेव के शिशु के रूप में बड़ी ही अनूठी और कमनीय कल्पना की है। उस शिशु राजकुमार वसंत को वृक्ष के पालने पर किसलयों की कोमल शैय्या पर सुलाया जाता है।रंग - बिरंगे फूलों का झबला उसके शरीर की शोभा में चार चाँद लगा देता है । पवन उसके पालने को झूलाता है । मयूर अपने मनोहर नृत्य द्वारा और शुक मधुर संभाषण करके उसका मनोरंजन करते हैं। कोयल सुरीले स्वर में उसे लोरी सुनाती है । कंजकली रूपी नायिका अर्थात् नागरी महिला लता रुपीस साड़ी का पल्ला अपने सिर पर डालकर उस बच्चे की राई - नोन से नजर उतारती है । गुलाब के फूल सबेरा होते ही प्रस्फुटित पुष्पों की चटाक की ध्वनि करके चुटकी बजाकर उसे जगाता है । कितनी अद्भुत कल्पना है ।

कवि देव की ही शब्दावली में वसंत के मानवीकरण का आनंद लें –

डार द्रुम पालनौ बिछौना नव पल्लव के

सुमन झंगूला सोहै तन छबि भारी दै।

पवन छुलावै केकी कीर बतरावै देव

कोकिल हलावै हुलसावै करतारी दै।।

पूरित पराग सों उतारौ करै राई नौन

कंज - कली नायिका लतानि सिर सारी दै।।

इसी तरह रसिक गोविंद भी नजर उतारने का उल्लेख करते हैं –

मुखरित पल्लव फूल सुगंध परागहिं झारत

जुग मुख निरखि बिपिन मनु राई – लोन उतारत।

बेनी कवि ने वसंत को लेकर एकदम अलग प्रकार की कल्पना की है। उनके अनुसार वसंत

तो कामदेव रूपी अंग्रेज सम्राट का विप्लवकारी सेनापति है जो बंदूकों - तोपों आदि मारक अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित सेना लेकर विरहिणी अबलाओं पर टूट पड़ा है –

धायनि कुसुम केसू किसलय कुमेदान

कोकिला कलापकारी कारतूस जंगी है।

तोपें विकरारे जे बेपात भयीं डारैं

दारूधूरि धारैं और गुलाब गोला जंगी है

बेनी जू प्रबीन कहैं मंजरी संगीन पौन

बाजत तंदूर भौंर तूर तासु संगी है..।

बैरी बलवान विरहीन अबलान पर

आयो है बसंत कम्पू मदन फिरंगी है..।

प्रकृति के सुकुमार छायावादी कवि सुमित्रानंदन पंत की मानें तो -

पुष्पिश पलाश समस्त कामनाओं का प्रदाता है। उसके सौंदर्य से प्रकृति सुसज्जित है । सर्वत्र हरीतिमा का वातावरण है। वे कहते हैं -

वर्ण - वर्ण की हरीतिमा का वन में भरा विकास।

शत - शत पुष्पों के रत्नों की रत्नच्छटा पलाश।

प्रकट नहीं कर सकती यह वैभव पुष्कल उल्लास

वर्ण स्वरों से मुखर तुम्हारे मौन पुष्प अंगार।

यौवन के नवरत्न तेज का जिनमें मदिर उभार।

हृदय रक्त ही अर्पित कर मधु को अर्पण श्री शाल ।

तुमने जग में आज जलादी दिशि -दिशि जीवन - ज्वाल।

कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के वसंत में धरती सरसों की पीली साड़ी पहनकर इठला रही है –

फूली सरसों ने दिया रंग

मधु लेकर आ पहुंचा अनंग

वधू - वसुधा पुलकित अंग - अंग।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी अपने महाकाव्य "साकेत" में गा उठते हैं -

फूटा यौवन फाड़ प्रकृति की पीली - पीली चोली।

महादेवी वर्मा भी मादक वसंत रजनी को आमंत्रण देने लगती हैं - जो तारों को अपनी वेणी में गूँधकर , चंद्रमा को सिर का शीशफूल बनाकर और धवल चंद्रिका का घूंघट डाले अपनी बांकी चितवन से ओस बिंदुओं के मोती बरसाती हुई क्षितिज से धीरे-धीरे धरा पर उतर रही है । बिंबात्मक भाषा यह चित्र भी देखते ही बनता है –

धीरे –धीरे उतर क्षितिज से आ वसंत रजनी !

तारकमय नववेणी बंधन शीशफूल शशिका कर नूतन, रश्मिवलय सित घन अवगुण्ठन,

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे चितवन से अपनी।

पुलकती आ वसंत रजनी !!

बुंदेलखण्ड के लोकवि 'रजऊ' के चितेरे बुंदेली के पितामह ईसुरी की चर्चा बगैर किए यह वासंतिक आलेख अधूरा ही रहेगा –

अब रितु आइ बसंत बहारन, लगे फूल फल डारन

बागन बनन बंगलन बेलन, बीथी नगर बजारन

हारन हद्द पहारन पारन, धवल धाम जल धारन

तपसी कुटी कन्दरान माही, गई बैराग बगारन

ईसुर कंत अंत घर जिनके , तिने दैत दुख दारुन।

कमबख्त वसंत

इस अशिष्ट शब्द को पढ़कर चौंकिए मत । अब तो पानी सर से गुज़र गया है। आज के यांत्रिक युग की घोर भौतिकतावादी मानसिकता ने सब कुछ निगल लिया है। जल - जंगल - जमीन और जन तक तबाह हो चुके हैं। प्रकृति के दोहन के कारण ऋतुओं का वैभवशाली साम्राज्य धरा का धरा रह गया है। ऋतु - पर्वों तथा लोकोत्सवों की आनंदगंधी परंपराएँ विलुप्ति के कगार पर हैं। भाषाओं - बोलियों के ललित - लावण्या संसार रूखे हो चुके हैं..ऐसे में वसंत की चर्चा करना भले कुछ लोगों को निरापागलपन

लगे ...लेकिन इन ऋतु पर्वों की चर्चा करना उतनी ही आवश्यक है जितनी हम अपने प्राणों की करते हैं। प्रकृति प्राण संस्कृति है, रस संस्कृति है...।

आइए इसे बचाने के लिए हर संभव प्रयास करें और विश्वप्रसिद्ध समोलक डा. रामविलास शर्मा की इन पंक्तियों पर भी ध्यान देते रहें -

वीरान हो चुके हैं सब बाग - बगीचे

और जिबह कर डाले गए हैं सारे के सारे दरख़्त !

विकास के नाम पर उग आया है शहर में

सीमेंट का बियाबान जंगल

अमलतास, आम और पलाश की तो बात ही क्या

दिखाई नहीं देती दूर-दूर तक सरसों की झूमतीं कतारें तक भला बताओ, अब कैसे सोचे –समझें बेचारे लोग

कि कब आकर गुजर गया चुपचाप इस शहर से

कमबख्त वसंत !

(संस्मरण)

ताई की छड़ी

विनोद क्वात्रा

दो एकदो दोदूनीचार दोतीयाछै.......

जी हाँ! यही तरीका था उस के पढ़ाने का। हाथ में छड़ी लेकर केवल खड़ी रहती थी, बच्चे डरते थे मगर छड़ी के डर से पढ़ाई में मन लगाते थे। क्या बचपन था! हर चीज कौतुहल वश जानने की इच्छा रहती थी। बस मेरे घर से छोटे छोटे पैरों से पचास कदम दूर था ताई का खुले आकाश वाला स्कूल।

ताई के स्कूल में जाने का मतलब था कि बच्चा लगभग तीन साल का हो चुका है। पंजाबी में कहूँ तो काने की कलम को चाकू या ब्लेड से ऐक साइड से पतला आकार देकर आगे से कलम का खत (पेन की निब जैसा आकार) दे दिया जाता था।

दवात में खड़िया घुली होती थी,लकड़ी की तख्ती पर कलम को

दवात में डुबो डुबोकर लिखा करते थे। तख्ती को रोज धोना फिर गाचनी मलकर सुखाना, दवात में नित्य खड़िया और पानी की

दवात में नित्य खड़िया और पानी की

मात्रा का निरीक्षण करना तथा कलम के खत की धार को देखना।

एक दो कलम और भी साथ में रखना ताकि कलम अचानक टूट जाए तो लिखावट में अवरोध ना आये। ताई के पास जाने से पहले नित्य ही यह मशक्कत हमें स्वयम ही करनी पड़ती थी।

वह जगत ताई थी। छोटे, बड़े, बुजुर्ग, बच्चे और पड़ोसी सभी ताई कहकर बुलाते थे। एक पतली दुबली गरीब बूड़ी औरत,

ऐक धोती में सारे शरीर को ढके रहती थी। कब उस के पति गुजरे थे, पता नहीं। आसपास के बच्चों को पढ़ा कर जीवन निर्वाह कर रही थी। प्रारम्भिक शिक्षा के लिए आसपास के माँ बाप बच्चों को इसी के पास भेजते थे। पाँच साल से पहले किसी स्कूल में दाखिला नहीं होता था।

हमारा किराये का मकान था उसकी पिछवाड़े की दीवार से चिपकी कुछ कोठड़ियाँ मुख्य सड़क की तरफ बनी थीं, कोठड़ी के सामने चौड़ी सड़क को पार कर सामने शिव मंदिर से बिल्कुल

चिपका पक्का कुँआ था। कुँऐं के साथ के चबूतरे पर लाइन से बच्चों को बैठाकर अपनी दिनचर्या के काम करते हुए पढ़ाती रहती थी। ताई की कोठरी के साथ छोटी मुँढ़ेर वाला कच्चा कुँआ भी था। टाट बिछाकर 15 - 20 बच्चे इधर भी बैठकर पढ़ सकते थे। हम सब छोटे छोटे बन्दर थे पर आज कल के बच्चों की तरह शरारती नहीं थे।

हमारे पास आजकल के बच्चों की तरह मंहगे खेल नहीं थे।कंच्चे, चीचे (इमली की गुठलियों) और गुल्ली-डंडा बस यही

बचपन में खेलते आये। इमली की गुठलियों से उच्चा-उच्ची

खेलते थे। नाम सुनकर आश्चर्य चकित हुये न? खेलों के नाम भी हम खुदी देते थे। रोज कुछ नया करने की धुन सवार रहती थी।

रात को सपनों में भी बड़बढ़ाते थे। रंग बिरंगे गोल गोल कंचे कितने सारे जीत लिए थे हमने। हम अपने जमाने के चैम्पियन रहे। मगर खेल को खेल भावना की तरह ही खेला, बेइमानी होने पर सचाई कै लिये लड़ जाते थे।

ओह पूज्यनीय ताई की बात सुनाते सुनाते मैं कहाँ से टपक पड़ा, अपनी गाथा क्यों बीच में गा रहा हूँ। यह तो मिशन स्कूल की बातें थीं जहाँ मैं ताई की की मर्यादित पढ़ाई के बाद दाखिल हुआ था।

प्रारम्भ से ही मर्यादित प्रशिक्षण के बीच शिक्षा का श्रीगणेश हुआ था। बच्चों को टाट पट्टी पर लाइन से बैठाकर पढ़ाया जाताथा।नये बच्चों को पहाड़े याद कराने के लिए खड़ा कर दिया जाता, किसी पहले पढ़ रहे बच्चे को खड़ा कर पहाड़े जोरजोर से बुलवाये जाते, नये बच्चे जोरजोर से ऊँची आवाज में दोहराते, इस प्रकार नये बच्चे बड़ी जल्दी पहाड़े याद कर लेते। 2एकम2,

2दूनी4, 2तीया6 -------बड़ा अच्छा लगता था समूह में पहाड़े दोहराना।

मैं ने जिक्र किया था ताई के कमरे के सामने छोटे से शिव मंदिर का और पक्के कुँये का, इसी के धरातल पर जब ताई के चबूतरे पे धूप आती तो बच्चे सामने कुयें के पास बैठकर पढ़ते थे। कभी कभी पानी भरते समय घिरी की बहुत आवाज आती,पानी भरते समय बाल्टी के पानी में धम्म से गिरने की आवाज पढ़ाई में बहुत प्रावधान पैदा करते थे। मगर ताई के हाथ में पकड़ी जालिम छड़ी का डर उस ओर ध्यान जाने ही नहीं देते थे। सब अच्छे से चलता था। सुबह से शाम तक ताई की कक्षाएं निर्बाध चलती थीं। बीच दोपहर कुछ घंटो की छुट्टी होती थी। अपनी सुविधानुसार बच्चों के आने का क्रम था। दूर दूर तक प्रसिद्ध हो चुकी थी ताई की पढ़ाई।

जरा सा भी ध्यान भटकता तो हथेली पर छड़ी का जोर से प्रहार होता,कभी तो बच्चे चीख मार कर रोते, पर कभी भी बच्चों के माता-पिता ने कुछ नहीं कहा ताई से। वह एक घंटा ताई की फौजी छड़ी की देख-रेख में गुजरताथा। वह एक घ्रंटा हमारे जीवन की नींव निर्माण का था। नींव रक्खी जा चुकी थी, शनै: शनै: निर्माण चल रहा था। तब तो हमें बहुत खल रहा था। पर आज लग रहा है जैसे ताई की छड़ी हमारे भविष्य का निर्माण कर गई।

लुड़कती पुड़कती बिचारी ताई अकेली ही लड़ती रही, जीवन के अन्तिम प्रयास तक। अस्सी वर्ष के आसपास होकर भी वह अत्यंत फुर्तीली थी। बहुत की उसे चाह नहीं थी। जूझ रही थी एक धोती में रहकर जीवन के संग्राम से। एक दिन काल के बेरहम हाथों ने उसे डस लिया। हमेशा के लिए शान्त हो गई ताई की छड़ी। बहुत आतंक फैला रक्खा था बच्चों के मन और मस्तिष्क पर। मगर आज बच्चों के साथ अशान्त असहाय होकर रो रही थी। आँसू कहाँ गये उस छड़ी के? शायद सूख चुके थे। अब तक उसे ताई के कोमल हाथों के स्पर्श की आदत पड़ चुकी थी।

लेख में व्यक्त विचार लेखक के हैं उनसे संपादक मण्डल या संपर्क भाषा भारती पत्रिका का सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद की स्थिति में न्याय-क्षेत्र नई दिल्ली रहेगा। प्रकाशक तथा संपादक : सुधेन्दु ओझा, 97, सुंदर ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली110092

आदमी का काम

लघुकथा : संजय कुमार सिंह

" पापा घर से चिड़िया का घोंसला उजाड़ दें?"बेटे ने अचानक उंगली से इशारा करते हुए पूछा।

" नहीं बेटा।" पापा ने रोकते हुए कहा।

"क्यो?" बेटे ने सवाल दागा," घर के वेंटीलेशन पर कचड़ा जमा कर दिया है। कितना तो गंदा लगता है?"

" बेटा इसमें उनका कुसूर नहीं है।" पापा ने समझाते हुए कहा।

" तब किसका है?" बेटे ने आश्चर्य से पूछा।

"आदमी का।" पापा ने झटके से कहा," और किसका?"

" कैसे?" बेटे ने धीरे से पूछा।

" ऐसे बेटै कि आदमी ने चिड़िया के सारे जंगल काट लिए।"पापा ने कुछ पल सोचने के बाद कहा," अब वे कहाँ जाएँगे?न जंगल है उनके पास, न नदी और न आसमान।सब पर आदमी का कब्जा!दाना-पानी की किल्लत में वे इधर रहने आ गए।"

" उन्हौंने खुद से तो अपना जंगल नहीं बेचा होगा?"बेटे की जिज्ञासा सही थी।

" नहीं... नहीं, वे क्यों ऐसा करते, उन्हें क्या पड़ी थी !" पापा ने अकचकाते हुए कहा," यह पैसा कमाने का खेल है! सिर्फ आदमी करता है... और कोई नहीं!"

" चिड़िया को भी पैसा कमाना चाहिए पापा!"

" क्यों?"पापा को बेटे का सवाल अटपटा लगा।

" कोई उन्हें उजाड़ता नहीं तब!"

" कैसे ?"

" आदमी आता,वह पैसा दे देती आदमी को।"

पापा अवाक! अब क्या कहें!वे बेटे के व्यंग पर रूखी हँसी हँस कर रह गए।बेटे को आदमी का काम ठीक नहीं लगा था।वह आदमी के काम से सचमुच दुखी हो गया था!

संदीप मिश्र 'सरस'

ज़िन्दगी के पाठ्यक्रम में
इस कदर गड़बड़ हुई है,
आज उत्तर सभ्यता के,
प्रश्नवाचक हो गए हैं।

नौकरी छूटी, तो कारें
कर्ज वाली छिन गयी हैं,
व्यर्थ सपने बेचते बाजार ने
हमको ठगा है।
नोटिसें आने लगीं,
शोरूम के व्यापारियों की,
चमचमाते मॉल के
व्यापार ने हमको ठगा है।

ब्याज पर जिनके भवन थे,
आज वह फुटपाथ पर हैं,
कल तलक थे दानदाता,
आज याचक हो गए हैं।

कारखानों को सदा
मजदूर श्रम से सींचते थे,
वक्त बदला तो उन्हीं के
द्वार पर ताले जड़े हैं।
स्वार्थ के ही द्वार पर
इंसानियत गिरवी पड़ी है,
और वह असहाय होकर
आज सड़कों पर खड़े हैं।

गाँव वापस चल पड़े हैं,
पेट बाँधे पीठ पर वह,
प्रेम धोखा शब्द,
फिर पर्यायवाचक हो गए हैं।
गाँव, जिनको छोड़ बैठे थे,
महानगरों की खातिर,
वक़्त की ठोकर लगी तो
गाँव फिर से याद आये।
गाँव की पगडंडियाँ,
खेतों की मेड़ें याद आईं,
प्रेमपूरित द्वार घर के
ठाँव फिर से याद आये।
आपदा में अहमियत समझे,
सगे सम्बन्धियों की,
जो कभी निर्लिप्त थे वह
भाववाचक हो गए हैं।

नव वर्ष अभिनन्दन

नव वर्ष तुम्हारा अभिनन्दन
सौरभमयी हो जैसे चन्दन
हो सब के मन में उजियारा
नव वर्ष में बरसे सुख धारा
तेरे आने पे सब खुश हों
जाये न भूख से कोई मारा
जन-जन में कभी न हो क्रंदन
नव वर्ष तुम्हारा अभिनन्दन
अब करे न कोई घोटाला
आतंक पे लग जाये ताला
सब दृढ निश्चय से तन्मय हों
हो राष्ट्र-प्रेम का मतवाला
करते धरती-माँ का वंदन
नव वर्ष तुम्हारा अभिनन्दन
सब जग में हो भाईचारा
मन-मंदिर में हो उजियारा
सब लोग द्वेष से दूर रहें
नयनों में प्रेम की हो धारा
ऊसर बन जाये नंदन--वन
नव वर्ष तुम्हारा अभिनन्दन

डा. केवलकृष्ण पाठक

(1)

ताप बने, माप बने, हिंदी सुविचार हो।
भाव बने, ताव बने, हिंदी उच्चार हो।।
हिंदी फल, हो कलकल, हिंदी सुविधान हो।
हिंदी सत्, नित अनंत, हिंदी यशगान हो।।

(2)

हो उन्नति, हो सद्गति, आन रहे आस हो।
धूप रहे, भूप रहे, नित नव इतिहास हो।।
हिंद बने, प्रेम सने, नित जय जयकार हो।
हिंदी हो, बिन्दी हो, भाषा अधिकार हो।।

(3)

भाषा है, आशा है, हिंदी तु विहान है।
साज़ सदा, नाज़ सदा, हिंदी अरमान है।।
हिंदी खिल, हिंदी मिल, हिंदी तु जहान है।
हिंदी बढ़, हिंदी चढ़, हिंदी उत्थान है।।

(4)

हिंदी सुन, हिंदी बुन, हिंद को सुनाइए।
हिंदी चुन, हिंदी गुन, हिंदी दुहराइए।।
हिंदी ज़िद, हिंदी हद, नई रूपमालिके।
हिंदी छवि, हिंदी रवि, हिंदी नवतालिके।।

(5)

हिंदी रब, हिंदी लब, हिंदी नित बोलना।
हिंदी तन, तेजी बन, राह नई खोलना।।
हिंदी घृत, नेहोंरत्, जनता को जोड़ना।
हिंदी अब, प्रताप नव, सोच नवल मोड़ना।।

(6)

हिंदी गति, हिंदी मति, आज नवल कामना।
हिंदी प्रिय, हिंदी हिय, इसे तो उतारना।।
छंद कहे, प्रीति गहे, रसों को तो पीजिए।
लेख गीत, रीति जीत, भावुकता लीजिए।।

डॉ शरद नारायण खरे

युग परिवर्तन....

अब लड़कियां
कोई मूक प्राणी नहीं होतीं
जो एक खूंटे से खोलकर
दूसरे खूंटे से बांध दी जाएं
और कोई वस्तु भी नहीं होतीं
जो दान में किसी को भी
दे दी जाएं।

मां बाप का अस्तित्व
इनके अस्तित्व में इस तरह
घुला मिला होता है
जिसे किसी भी प्रयोगशाला में
अलग अलग नहीं किया जा सकता।

लड़की को प्रणय बंधन में बांधना
मोहब्बत की नई दुनिया को
सौंपना होता है
यहां उसे दो घरों की
मोहब्बत भी मिलती और जिम्मेदारी भी ।

स्थान और नाम बदलने से किसी का
बजूद गुम नहीं होता
रगों में दौड़ता लहू
हमेशा इसकी गवाही देता है।
लड़कियां फूलों की टोकरी
नहीं होती
जो तोड़कर हार बनाकर
मुरझाने पर पानी में बहा दी जाएं।

लड़कियां तो कलेजे का टुकड़ा होती हैं
जिसे खुद से जुदा कर पाना
मुश्किल ही नहीं नामुमकिन होता है।
प्रणय बंधन के बाद
लडकियों के दो घर होते हैं
लड़कियों का अपना कोई घर नहीं होता
युग ने इस दकियानूसी सोच को
खारिज़ कर दिया है।

चिड़ियां चहचहाती हुई ही
अच्छी लगती हैं
दुआ करो
चिड़ियां किसी भी आंगन की हों
बस हमेशा चहचहाती रहें ॥

अशोक दर्द

रौद्रनाद

हे पाखण्ड खण्डिनी कविते ! तापिक राग जगा दे तू।
सारा कलुष सोख ले सूरज, ऐसी आग लगा दे तू।।
कविता सुनने आने वाले, हर श्रोता का वन्दन है।
लेकिन उससे पहले सबसे, मेरा एक निवेदन है।।

आज माधुरी घोल शब्द के, रस में न तो डुबोऊँगा।
न मैं नाज नखरों से उपजी, मीठी कथा पिरोऊँगा।।
न तो नतमुखी अभिवादन की, भाषा आज अधर पर है।
न ही अलंकारों से सज्जित, माला मेरे स्वर पर है।।

न मैं शिष्टतावश जीवन की, जीत भुनाने वाला हूँ।
न मैं भूमिका बाँध बाँध कर, गीत सुनाने वाला हूँ।।
आज चुहलबाजियाँ नहीं, दुन्दुभी बजाऊँगा सुन लो।।
मृत्यु राज की गाज काल भैरवी सुनाऊँगा सुन लो।।

आज हृदय की तप्त बीथियों, में भीषण गर्माहट है।
क्योंकि देश पर दृष्टि गड़ाए, अरि की आगत आहट है।।
इसीलिए कर्कश कठोर वाणी का यह निष्पादन है।
सुप्त रक्त को खौलाने का, आज विकट सम्पादन है।।

कटे पंख सा विवश परिन्दा, मन के भीतर जिन्दा है।
कुछ लोगों के कारण भारत, बुरी तरह शर्मिन्दा है।।
जितना खतरा नहीं देश को, दुश्मन के हथियारों से।
उससे ज्यादा भय लगता है, छिपे हुए गद्दारों से।।

ये इतने मतलब परस्त हैं, धर लें धन की पेटी को।
बदले में गिरबी रख सकते, हैं माँ बीवी बेटी को।
दाँव लगे तो धरा धाम, परिवेश बेच सकते हैं ये।
क्षणिक स्वार्थ के लिए स्वर्ग सा, देश बेच सकते हैं ये।।

जासूसों की ठण्ड घटाने को, सिगड़ी रख देते ये।
गुस्ताखों की भूख मिटाने को, रबड़ी रख देते ये।।
देशद्रोहियों के मुख में मुर्गी तगड़ी रख देते ये।
जयचन्दों के अभिनन्दन में, झट पगड़ी रख देते ये।।

जिनकी सोच समझ पर कुण्ठा, के जाले पड़ जाते हों।
राष्ट्र गीत गाते ही अधरों पर ताले पड़ जाते हों।।
जिनकी शक्ल देखते रोटी, के लाले पड़ जाते हों।
कौओं की क्या कहूँ कबूतर, तक काले पड़ जाते हों।।

जिनको अन्तर नहीं सूझता, पापड़ और पहाड़ों में।
कौन शक्ति बलबती सोचते,भों भों और दहाड़ों में।।
उनकी चिन्ता नहीं मुझे वे, सुनें या कि अनसुना करें।
बैठें या फिर चले जाँय, घर पर जाकर सिर धुना करें।।

वही रहे नर नाहर जिसमें, सुनने का दम गुर्दा हो।
वरना चला जाय मजमें से, जिन्दा हो या मुर्दा हो।।
मैं आया हूँ वीरों की रग रग में रोश जगाने को।
कायर में ही नहीं नपुंसक, तक में जोश जगाने को।

इतना है विश्वास कापुरुष, सुन लें मेरी वाणी को।
निश्चय ही तलवार उठा लेंगे कर में कल्याणी को।।
मेरी आग भरी वाणी से, दहक उठेगी यह दुनिया।
ज्वालाएँ बरसेंगी मुख से, धधक उठेगी यह दुनिया।।

जिन लपटों की लपक देख, थर्राती लोहे की छाती।
पिघल पिघल कर मोम सरीखी, पानी पानी हो जाती।।
उसी आग की चिनगारी को, बिछा रहा हूँ डग डग में।
कोशिश है भर दूँगा बाँके, वीरों की मैं रग रग में।।

मैं छन्दों में ढाल चुका हूँ, लावा ज्वालामुखियों का।
जबरदस्त आह्वान किया है, योद्धा सूरजमुखियों का।।
हिम्मत हो तो ही तुम सुनना, वरना जाना भाग कहीं।
कविता सुनने के चक्कर में, लगा न लेना आग कहीं।।

छोटे मुंह से बड़ी बात बेशक तुमको चुटकुला लगे।
या आए इस सुप्त काल में, प्रलयंकर ज़लज़ला लगे।।
मेरी कविता तुम को चाहे, कला लगे या बला लगे।
यह भारत का रौद्र नाद है, बुरा लगे या भला लगे।।

कपटी मन के पेट दर्द की, जड़ी हमारे पास नहीं।
छूमन्तर कर देने वाली, छड़ी हमारे पास नहीं।।
चलता समय रोक ले ऐसी, घड़ी हमारे पास नहीं।
चाल भरी छल विद्या छोटी बड़ी, हमारे पास नहीं।।

इसीलिए इस शेष सभा को, काज बताने आया हूँ।
मैं यौवन के स्वर्ण काल का, राज बताने आया हूँ।।
तुम क्या हो तुम क्यों आये हो ? क्या करना मालूम नहीं।
कैसे जीना तुम्हें और कैसे मरना मालूम नहीं।।

इसीलिए इस ज्ञान खण्ड की शिक्षा, बहुत जरूरी है।
जन्म लिया जिस भू पर उसकी, रक्षा बहुत जरूरी है।।
हे बलिवीरो! उठो सुनो तुम जो चाहो कर सकते हो।
मात्र आत्म बल के बल पर तन में पौरुष भर सकते हो।।

तुम्हें किसी अदृश्य शक्ति ने जो सामर्थ्य परोसा है।
जिस के बल पर मातृभूमि को तुम पर अटल भरोसा है।।
जब तक तुम हो तब तक तय है, दुश्मन सफल नहीं होगा।
जीव जन्तु क्या जड़ चेतन का, जीवन विकल नहीं होगा।।

तुम चाहो तो कण कथीर के, कंचन कोहिनूर कर दो।
चट्टानों को दबा दबा कर, कर से चूर- चूर कर दो।।
पलक खोलते ही पल में, पाषाण पिघलने लग जाएँ।
एक फूँक में आँधी क्या, तूफान मचलने लग जाएँ।।

पाँव पटकते ही पानी की, धार धरा से फूट पड़े।
तुम चाहो तो इन्द्र बज्र सा, साहस अरि पर टूट पड़े।।
आत्मबली वीरों को किंचित, भय न किसी खाँ का होता।
बीच बैरियों के लड़ते हैं, बाल नहीं बाँका होता।।

सिर पर कफन बाँध कर चलना, व्रत होता रणधीरों का।
तभी साथ मिलता तूफानी, आँधी और समीरों का।।
राष्ट्र यज्ञ में प्राणाहुति से, बड़ा और बलिदान नहीं।
इससे बढ़कर कीर्तिकाम का, कोई भी सम्मान नहीं।।

रात्रि घनी है जंग ठनी है, दीपक बनकर जलना है।
अँधियारों के बीच बैठकर, मुख से आग उगलना है।।
सुन लो राष्ट्र प्रेम के चिन्तन, का मन्तव्य समझते जो।
मातृभूमि की सेवा को, पहला कर्तव्य समझते जो।।

उनसे ही कह सकता हूँ मैं, मरने मिटने जीने की।
दुश्मन से लोहा लेने की, छक कर पीयूष पीने की।।
वीरों को मन से प्रणाम है, मेरा बस इतना कहना।
दुश्मन घात लगाकर बैठे हैं, तुम चौकन्ने रहना।।

आज नहीं तो कल इन हालातों से पाला पड़ना है।
हमें युद्ध दोगलों और, दुश्मन दोनों से लड़ना है।।
इसीलिए हर प्रहर कमर पर काल बाँध कटिबद्ध रहो।
क्या जाने कब बैरी कर दे, हमला तुम सन्नद्ध रहो।।

गिरेन्द्र सिंह भदौरिया "प्राण"

हनीमून

"तू इतनी उदास क्यों है?" सियारनी को मुँह फुलाये बैठी देख सियार बोला।

"तुमसे मतलब?"

"तुम तो गाँव-देहात के बाहर ही हू-हू करके मस्त हो, कभी सोचा है इस सड़ियल और अँधेरे में डूबे, गंधाते हुये गाँव के आगे भी कुछ होता है?"

"आगे क्या है, जरा समझाकर कहो?" सियार बोला।

"कल मैंने सपने में देखा है कि उस पहाड़ी से पार एक खूबसूरत शहर है, जहां पर आकाश को छूते हुये बड़े-बड़े मकान है, रंग बिरंगी रौशनी में नहाया हुआ पूरा शहर जन्नत जैसे लगता है। वहां रहने वाले आदमी खूबसूरत और साफ-सुथरे हैं, तरह-तरह के परिधानों से सजी औरतें अप्सरा जैसी हैं।

छोटे-छोटे बच्चे खरगोश की तरह धमाचौकड़ी भरते दीदे मटकाते, गली में खेलते हुए बहुत सुन्दर लगते हैं।"

"हू--हू--हू----हम सियारों के सपने कभी सच हुयें हैं, पगली।" सियार हँसते हुए बोला।

"देखो, बहाने मत बनाओ, हमारे विवाह को एक साल हो गये हैं, तुमने इस गांव को छोड़कर कहीँ ले जाकर घुमाने की नहीं सोची। पहाड़ी तक भी नहीं। आजकल लोग हनीमून के बहाने अपनी पत्नी को कहाँ-कहाँ नही घुमाते हैं?

ठीक है, उस पहाड़ी तक तो ले चलो, कोई शहर होगा तो दूर से ही देखकर खुश हो लेंगे।"

सियार को सियारनी की लग गयी, सियार का सोया पौरुष जाग उठा। वह उसे साथ लेकर पहाड़ी की ओर चल पड़ा। पहाड़ी तक जाने का रास्ता बस्ती से होकर गुजरता था, जैसे ही

रामानुज अनुज

ये दोनों बस्ती में पहुँचे, कुत्तों ने खदेड़ लिया, दोनों किसी तरह जान बचाकर अपने ठिकाने लौट आये। सियारनी मायूस होकर अपनी तकदीर को कोसती हुई, झाड़ी में जाकर लेट गई। सियार से उसकी पीड़ा देखी नहीं गई। वह उसके सर में पंजा फेरता हुआ बोला--"प्रिय! फ़िक्र मत करो। फ़िक्र से सेहत पर बुरा असर पड़ता है। मैं अभी लोमड़ी भाभी के पास जाता हूँ, वह बुद्धिमान है। बुद्धिमानी के लिए उसे इस साल का सबसे बड़ा इनाम 'अक्ल श्री' दिया गया है। उसके पास

कोई न कोई हल जरूर होगा?"

सियार ने एक लंबी दौड़ लगाई, कुछ ही देर में वह चिक्की लोमड़ी के घर बैठा चाय सुड़क रहा था। सियार ने लोमड़ी को अपनी समस्या बताई। उसने सियार की बात बड़ी सिद्दत से सुनी। फिर भीतर से एक पुराने अखबार का टुकड़ा ले आयी और सियार को दिखाती हुई बोली--

"भाई, ये देखो, कलेक्टर साहब ने बस्ती होकर पहाड़ी जाने वाले मार्ग को आम रास्ता घोषित किया है, किसी प्रकार की रोक-टोक गैर कानूनी है, तुम निश्चिन्त होकर पहाड़ी पर जाओ। कुत्ते भूंकेगे, तो उन्हें अखबार की ये कटिंग दिखा देना।"

सियार ने लोमड़ी का धन्यवाद किया और अखबार का टुकड़ा मुँह में दबाये, ख़ुशी से भागता हुआ घर आया और सियारनी के सामने दुम हिलाकर बोला-

"उठो प्रिय चलने की तैयारी करो, पहाड़ी जाने से अब हमें कोई 'माई का लाल' नहीं रोक सकता है। ये देखो, लोमड़ी भाभी से कलेक्टर साहब का छपा-छपाया हुक्म ले आया हूँ। इसमें साफ-साफ लिखा है, बस्ती होकर पहाड़ी जाने वाला मार्ग सार्वजनिक निस्तार के लिए घोषित किया जाता है। किसी के आने-जाने में अब कोई रोक-टोक नहीं है।"

सियार और सियारनी फिर से पहाड़ी की तरफ चल पड़े, बस्ती में पहुँचते ही कुत्तों का समूह भूंकते हुये दौड़ा। कुत्तों को पास आता देख सियार भागने लगा, तब सियारनी चिल्लाकर बोली--"भाग क्यों रहे हो? ककलेक्टर का आदेश दिखाओ ना।"

भागता हुआ सियार जोर से बोला--"प्रिये! तुम भी भागकर, अपनी जान बचाओ। इस बस्ती के कुत्ते पढ़े-लिखे नहीं हैं।

हाई हील्स

विद्या त्रिपाठी

मंजू जी आज बहुत खुश थी। वो जताना चाह नहीं रही थी पर खुशी रोके रूक नहीं रही थी। उनकी खुशी को मृणाल बहुत गौर से देख और समझ रहा था। कार की अगली सीट पर अपनी दादी को बिठा आज वो मॉल घूमाने लाया था।खुद के लिए कुछ जूते खरीदे और फिर दादी को भी सैंडल दिलवाने के लिए महिला सैंडल के खंड में गया।50 के उम्र के हिसाब से सैंडल दिखा रही कर्मचारी को मंजू जी को पसंद आ जाए ऐसा कुछ दिखा पाने में सफलता न मिली तो मृणाल ने स्वयं ही मजाक में एक थोड़ी हील वाली सैंडल दादी को दिखा कर बोला दादी तेरे लिए तो ये अच्छी है कहा वो बुढ़ियों वाले सैंडल देख रही है। मंजू को वो सैंडल एक बार में पसंद आ गए पर सकुचा कर बोली अरे नही ये तो जवान बच्चियों के पहनने के है मैं कहा। इस उम्र में वही बुढ़ियों वाले सैंडल ही मुझे सही रहेंगे। मृणाल मुस्कुरा दिया और बोला फिर भी दादी एक बार पहन के तो देख कैसा है। मंजू जी पहले तो हिचकिचाई फिर बिना देर लगाए उस सैंडल को पैरो में डाल निहारने लगी। मृणाल को समझ आ गया के दादी को पसंद है सो उसने झूठा हठ दिखा वो सैंडल दादी को दिलवा दिया।कुछ और खरीदारी कर घर के लिए कार में बैठ गया। पर उसे ये समझ आ गया था की सैंडल दादी को बहुत पसंद आए क्योंकि बार- बार मंजू जी पूछ रही थी के समान सही से रखा है ना। रास्ता बीत गया मंजू और मृणाल घर आ गए। पार्किंग में समय लगता तो कुछ सामान के साथ उसने मंजू जी को घर के दरवाजे के सामने उतार दिया।पर जब मृणाल घर में आया तो दादी का उखड़ा मुखड़ा और दादा जी का चिढ़ा चेहरा देख समझ नही पाया के क्या हुआ। वो कुछ कहता या पूछता उसके पहले ही दादा जी ने लगभग तेज आवाज में कहा ," बूढ़ी घोड़ी लाला लगाम,जवानी बीत गई थी हील पहना ही नही इस बुढ़ापे में हील पहन कर चलेंगी।"

मृणाल ने दादा जी को समझते बोला "दादा जी वैसे भी दादी कहा जाती ही है,कभी मेरे साथ या पापा के साथ जाती भी है तो चलने की जरूरत कहा होती है कार है। वैसे भी उनको पसंद आया था और मुझे भी तो ले लिया। ये इतनी भी बुरी बात नहीं।"

दादा जी गुस्से में तमतमाते अपने कमरे में ये कहते चले गए की आज कल के बच्चों को कोई क्या समझाए।

वही मंजू जी ने भी अपना सैंडल उठा एक मुस्कान के साथ मृणाल की तरफ देखा और वो भी अपने कमरे में चली गई। रात काफी बीत चुकी थी तो खाना खा पी के सभी अपने कमरे में चले गए वातावरण काफी शांत था।ठंडी हवा बह रही थी, चांद ने चांदनी बिखेर कर हर वस्तु को अपने रंग में रंग लिया था, मंजू जी भी अपनी बालकनी में इस मनभावन हवा चांद और चांदनी के गुफ्तगू को निहार रहीं थी। उनके बालो पर बिखरी चांदनी इस चांदनी रात के साथ एक तालमेल बैठा रहे थे और मंजू जी के अनछुए एहसासों को जिसे समय के साथ अपने अंदर कही रख भूल गई थी को पिघला बाहर निकाल रहे थे। जब वो 8 वर्ष की थी तब पहली बार सहपाठी के पैरो में उन्होंने हील वाले सैंडल देखे थे। बाबा को कितनी बार ही इशारे में बताया की उन्हें भी हील वाले सैंडल चाहिए, पर आर्थिक स्थिति की कमजोरी ने बोलने का साहस नहीं दिया । जो मिला उसे ही अपना सबसे अच्छा समझ जीवन में आगे बढ़ती गई। वही जो मिला में संतुष्टि ने मां बाबा को भी बेफिक्र कर दिया और जल्द से जल्द विवाह कर अपने जिम्मेदारियों से मुक्त भी।अपने नए जीवन में प्रवेश के साथ मंजू जी ने न जाने कितने सपनो की पोटली को भी अपने साथ लाया। जिसमे हील वाले सैंडल का सपना भी था।पर मायके की आर्थिक कमजोरी की पीलिया ने यहां भी मंजू जी को अकेला नहीं छोड़ा। यहां आए दिन परिवार के नाम से ताने सुनने को मिलने लगे। अब उस आर्थिक कमजोरी को छुपाने के लिए मंजू जी ने प्राण झोंक कर परिवार को खुश करने की कोशिश की।एक कुशल गृहणी बन अपने परिवार को आगे ले बढ़ी। इन कोशिशों में उन सपनो की ख्वाहिशों और शौख की पोटली को कही गहरे में दबा कर रख दिया। पति के पसंद की चूड़ी, बिंदिया साड़ी, चप्पल पहन यहां भी उन्होंने संतुष्ट हो जाने का धर्म निभाया। आज जब मृणाल ने उनके बचपन का एक शौख पूरा किया तो वो छोटी मंजू जो आज भी सैंडल के लिए टुकुर टुकुर सहपाठी के सैंडल को ताक रही थी किलकारे मार कर हंस पड़ी झूम उठी। आज मंजू जी को चांदनी रात बहुत ही भावपूर्ण लग रही थी। अपनी सहेली सी लग रही थी और इस रात में उनके पैरो का सैंडल भी इतरा रहा था।

समाज और राष्ट्र के कर्णधार हैं युवा

युवा वर्ग मानव शक्ति का सबसे प्राणवान और ऊर्जस्वी वर्ग है, जो सदैव प्रगति और विकास का अगुआ रहा है। युवा किसी भी समाज और राष्ट्र के कर्णधार हैं, वे उसके भावी निर्माता हैं। चाहे वह नेता या शासक के रूप में हों, चाहे डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक, साहित्यकार व कलाकार के रूप में हों। इन सभी रूपों में उनके ऊपर अपनी सभ्यता, संस्कृति, कला एवम् ज्ञान की परम्पराओं को मानवीय संवेदनाओं के साथ आगे ले जाने का गहरा दायित्व होता है। भारत को विश्व की महाशक्ति बनाने में युवा शक्ति का सबसे बड़ा योगदान है। आज पूरी दुनिया की निगाहें युवा वर्ग पर टिकी हुई हैं। वे राष्ट्र के सबसे ऊर्जावान भाग में से एक हैं और इसलिए उनसे बहुत उम्मीदें हैं। सही मानसिकता और क्षमता के साथ युवा राष्ट्र के विकास में योगदान कर सकते हैं और इसे आगे बढ़ा सकते हैं। भारत विश्व के सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों में से एक है और हमारी जनसंख्या का लगभग 65 फीसदी हिस्सा युवा हैं। हमारी जनसंख्या का 50 प्रतिशत हिस्सा 18-35 वर्ष की आयु का है। भारत में 27.5 प्रतिशत जनसंख्या 15 से 29 साल के आयुवर्ग के लोगों की है वही 41.3 प्रतिशत लोग 13 से 35 साल की उम्र के हैं। ऐसे में युवाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता है। अगर इन युवाओं को सही ढंग से तराशा और संवारा जाए तो वे राष्ट्रीय गौरव का एक नया इतिहास रच सकते हैं। युवा वर्ग अपनी मेघा, परिश्रम और लगन से सबको चमत्कृत कर सकते हैं और युवा शक्ति भारत को विश्व का मुकुटमणि बना सकती है। इसीलिए यह आवश्यक है कि युवाओं के व्यक्तित्व का निर्माण हमारी प्राथमिकता में शामिल हो।

कृष्ण कुमार यादव

भारत में स्वामी विवेकानन्द जी की जयंती, अर्थात 12 जनवरी को प्रतिवर्ष 'राष्ट्रीय युवा दिवस' के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने सन् 1984 ई. को 'अन्तरराष्ट्रीय युवा वर्ष' घोषित किया था और तदनुसार भारत सरकार ने सन 1984 से ही स्वामी विवेकानन्द जयंती का दिन राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में देशभर में मनाने का

निर्णय लिया। स्वामी विवेकानंद का यह कथन युवाओं के लिए सदा से प्रेरणास्रोत रहा है - "“उठो, जागो, स्वयं जागकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाये।" निश्चतत: स्वामी विवेकानन्द आधुनिक मानव के आदर्श प्रतिनिधि हैं। उनका जीवन दर्शन और आदर्श भारतीय युवकों के लिए प्रेरणा का बहुत बड़ा स्रोत है। उन्होंने हमें कुछ ऐसी वस्तु दी है जो हममें अपनी उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त परम्परा के प्रति एक प्रकार का अभिमान जगा देती है। उन्होंने युवाओं का आह्वान किया, " चिंतन करो, चिंता नहीं, नए विचारों को जन्म दो।" तीस वर्ष की आयु में स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो, अमेरिका के विश्व धर्म सम्मेलन में हिंदू धर्म का प्रतिनिधित्व किया और उसे सार्वभौमिक पहचान दिलवायी। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक बार कहा था-"यदि आप भारत को जानना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़िये। उनमें आप सब कुछ सकारात्मक ही पायेंगे, नकारात्मक कुछ भी नहीं।"

युवा शब्द अपने आप में ही उर्जा और आन्दोलन का प्रतीक है। एक राष्ट्र जो ऊर्जावान, जिज्ञासु और मेहनती युवकों से भरा है और उन्हें काम के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने में सक्षम हो वह अपने विकास के लिए मजबूत आधार बनाता है। युवा वह दीवार है जिस पर राष्ट्र की भावी छतों को सम्हालने का दायित्व है। भारत की कुल आबादी में युवाओं की हिस्सेदारी करीब 65% प्रतिशत है जो कि विश्व के अन्य देशों के मुकाबले काफी है। इस युवा शक्ति का सम्पूर्ण दोहन सुनिश्चित करने की चुनौती इस समय सबसे बड़ी है। हमारे देश में कई प्रतिभाशाली और मेहनतकश युवा हैं जिन्होंने देश को गर्व की अनुभूति कराई है। भारत में युवा पीढ़ी उत्साहित और नई चीजें सीखने के लिए उत्सुक हैं। चाहे वह विज्ञान, प्रौद्योगिकी या खेल का क्षेत्र हो - हमारे देश के युवा हर क्षेत्र में श्रेष्ठ हैं।

अगर देश में युवाओं की मानसिकता सही है और उनके नवोदित प्रतिभाओं को प्रेरित किया गया तो वे निश्चित रूप से समाज के लिए अच्छा काम करेंगे। उचित ज्ञान और सही दृष्टिकोण के साथ वे प्रौद्योगिकी, विज्ञान, चिकित्सा, खेल और अन्य सहित विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्टता प्राप्त कर सकते हैं। यह न केवल उन्हें व्यक्तिगत रूप से और पेशेवर रूप में विकसित करेगा बल्कि पूरे राष्ट्र के विकास और प्रगति के लिए भी योगदान देगा। दूसरी ओर यदि देश के युवा शिक्षित नहीं हैं या बेरोजगार हैं तो यह अपराध को जन्म देगा।

अपनी संस्कृति और जीवन मूल्यों से दूर हटना है, वहीं दूसरी तरफ हमारी शिक्षा व्यवस्था का भी दोष है। इन सब के बीच आज का युवा अपने को असुरक्षित महसूस करता है, फलस्वरूप वह शार्टकट तरीकों से लम्बी दूरी की दौड़ लगाना चाहता है। जीवन के सारे मूल्यों के उपर उसे 'अर्थ' भारी नजर आता है। इसके अलावा समाज में नायकों के बदलते प्रतिमान ने भी युवाओं के भटकाव में कोई कसर नहीं छोड़ी है। फिल्मी परदे और अपराध की दुनिया के नायकों की भांति वह रातों-रात उस शोहरत और मंजिल को पा लेना चाहता है, जो सिर्फ एक मृगण्तृष्णा है। ऐसे में एक तो उम्र का दोष, उस पर व्यवस्था की विसंगतियाँ, सार्वजनिक जीवन में आदर्श नेतृत्व का अभाव एवम् नैतिक मूल्यों का अवमूल्यन ये सारी बातें मिलकर युवाओं को कुण्ठाग्रस्त एवम् भटकाव की ओर ले जाती हैं, नतीजन-अपराध, शोषण, आतंकवाद, अशिक्षा, बेरोजगारी एवम् भ्रष्टाचार जैसी समस्याएँ जन्म लेती हैं।

भारतीय संस्कृति ने समग्र विश्व को धर्म, कर्म, त्याग, ज्ञान, सदाचार और मानवता की भावना सिखाई है। सामाजिक मूल्यों के

रक्षार्थ वर्णाश्रम व्यवस्था, संयुक्त परिवार, पुरूषार्थ एवम् गुरूकुल प्रणाली की नींव रखी। भारतीय संस्कृति की एक अन्य विशेषता समन्वय व सौहार्द्र रहा है, जबकि अन्य संस्कृतियाँ आत्म केन्द्रित रही हैं। इसी कारण भारतीय दर्शन आत्मदर्शन के साथ-साथ परमात्मा दर्शन की भी मीमांसा करते हैं। अंग्रेजी शासन व्यवस्था एवम् उसके पश्चात हुए औद्योगीकरण, नगरीकरण और अन्ततः पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव ने भारतीय संस्कृति पर काफी प्रभाव डाला। निश्चिततः इन सबका असर युवा वर्ग पर भी पड़ा है। आर्थिक उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के बाद तो युवा वर्ग के विचार-व्यवहार में काफी तेजी से परिवर्तन आया है। पूँजीवादी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की बाजारी लाभ की अन्धी दौड़ और उपभोक्तावादी विचारधारा के अन्धानुकरण ने उसे ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा और शार्टकट के गर्त में धकेल दिया। कभी विद्या, श्रम, चरित्रबल और व्यवहारिकता को सफलता के मानदण्ड माना जाता था पर आज सफलता की परिभाषा ही बदल गयी है। आज का युवा अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों से परे सिर्फ आर्थिक उत्तरदायित्वों की ही चिन्ता करता है।

युवाओं को प्रभावित करने में फिल्मी दुनिया और विज्ञापनों का काफी बड़ा हाथ रहा है पर इनके सकारात्मक तत्वों की बजाय नकारात्मक तत्वों ने ही युवाओं को ज्यादा प्रभावित किया है। फिल्मी परदे पर हिंसा, बलात्कार, प्रणय दृश्य, यौन-उच्छश्रृंखलता एवम् रातों-रात अमीर बनने के दृश्यों को देखकर आज का युवा उसी जिन्दगी को वास्तविक रूप में जीना चाहता है। वास्तव में परदे का नायक आज के युवा की कुण्ठाओं का विस्फोट है। पर युवा वर्ग यह नहीं सोचता कि परदे की दुनिया वास्तविक नहीं हो सकती, परदे पर अच्छा काम करने वाला नायक वास्तविक जिन्दगी में खलनायक भी हो सकता है।

शिक्षा व्यक्ति के भौतिक और नैतिक दोनों प्रकार के विकास का आधार तैयार करती है। यह हमारी संवेदनाओं और अवधारणाओं को परिष्कृत बनाती है, जिससे मन-मस्तिष्क को स्वतंत्रता और उनके बीच तालमेल स्थापित करती है और वैज्ञानिक दृष्टि के विकास में सहायता मिलती है। शिक्षा ज्ञान, बुद्धि और कौशल को समृद्ध बनाती है। शिक्षा व्यवसाय नहीं संस्कार है, पर जब हम आज की शिक्षा व्यवस्था देखते हैं, तो यह व्यवसाय ही ज्यादा ही नजर आती है। शिक्षण संस्थाएं, युवाओं के मस्तिष्क के लिए नए क्षितिजों के द्वार खोलने और उन्हें आज के जीवन संदर्भों की चुनौतियों का सफलतापूर्वक मुकाबला करने के लिए तैयार करती हैं। युवा वर्ग स्कूल व कॉलेजों के माध्यम से ही दुनिया को देखने की नजर पाता है, पर शिक्षा में सामाजिक और नैतिक मूल्यों का अभाव होने के कारण वह न तो उपयोगी प्रतीत होती है व न ही युवा वर्ग इसमें कोई खास रूचि लेता है। अतः शिक्षा मात्र डिग्री प्राप्त करने का गोरखधंधा बन कर रह गयी है। पहले शिक्षा के प्रसार को सरस्वती की पूजा समझा जाता था, फिर जीवन मूल्य, फिर किताबी और अन्ततः इसका सीधा सरोकार मात्र रोजगार से जुड़ गया है। ऐसे में शिक्षा की व्यवहारिक उपयोगिता पर प्रश्नचिन्ह लगने लगा है। शिक्षा संस्थानों में प्रवेश का उद्देश्य डिग्री लेकर अहम् सन्तुष्टि, मनोरंजन, नये सम्बन्ध बनाना और चुनाव लड़ना रह गया है। छात्र संघों की राजनीति ने कॉलेजों में स्वस्थ वातावरण बनाने के बजाय महौल को दूषित ही किया है, जिससे अपराधों में बढ़ोत्तरी हुई है। ऐसे में युवा वर्ग की सक्रियता हिंसात्मक कार्यों, उपद्रवों, हड़तालों, अपराधों और अनुशासनहीनता के रूप में ही दिखाई देती है। शिक्षा में सामाजिक और नैतिक मूल्यों के अभाव ने युवाओं को नैतिक मूल्यों के सरेआम उल्लंघन की ओर अग्रसर किया है, मसलन-मादक द्रव्यों व धूम्रपान की आदतें, यौन-शुचिता का अभाव, कॉलेज को

विद्या स्थल की बजाय फैशन ग्राउण्ड की शरणस्थली बना दिया है। दुर्भाग्य कई बार शिक्षक भी प्रभावी रूप में सामाजिक और नैतिक मूल्यों को स्थापित करने में असफल रहे हैं।

आज के युवा को सबसे ज्यादा राजनीति ने प्रभावित किया है पर राजनीति भी आज पदों की दौड़ तक ही सीमित रह गयी है। स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गाँधी ने जब मताधिकर की उम्र अट्ठारह वर्ष की थी तो उन्होंने 'इक्कीसवीं सदी युवाओं की' आह्वान के साथ की थी पर राजनीति के शीर्ष पर बैठे नेताओं ने युवाओं का उपयोग सिर्फ मोहरों के रूप में किया। विचारधारा के अनुयायियों की बजाय वैयक्तिक प्रतिबद्धता को महत्ता दी गयी। स्वतन्त्रता से पूर्व जहाँ राजनीति देश प्रेम और कर्त्तव्य बोध से प्रेरित थी, वहीं स्वतन्त्रता बाद चुनाव लड़ने, अपराधियों और भ्रष्टाचारियों को सरंक्षण देने और महत्वपूर्ण पद हथियाने का जरिया बन गयी। राजनीतिज्ञों ने भी युवा कुण्ठा को उभारकर उनका अपने पक्ष में इस्तेमाल किया और भविष्य के अच्छे सब्जबाग दिखाकर उनका शोषण किया। विभिन्न राजनैतिक दलों के युवा संगठन भी शोशेबाजी तक ही सीमित रह गये हैं। ऐसे में अवसरवाद की राजनीति ने युवाओं को हिंसा भड़काने, हड़ताल व प्रदर्शनों में आगे करके उनकी भावनाओं को भड़काने और स्वंय सत्ता पर काबिज होकर युवा पीढ़ी को गुमराह किया है।

आदर्श नेतृत्व ही युवाओं को सही दिशा दिखा सकता है। किसी दौर में युवाओं के आदर्श स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, नेता जी सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, डॉ. अम्बेडकर जैसे लोग या उनके आसपास के सफल व्यक्ति, वैज्ञानिक और शिक्षक रहे। पर आज के युवाओं के आदर्श वही हैं, जो शार्टकट के माध्यम से ऊँचाइयों पर पहुँच जाते हैं। फिल्मी अभिनेता, अभिनेत्रियाँ, विश्व-सुन्दरियाँ, भ्रष्ट अधिकारी, अपराध जगत के डॉन, उद्योगपति और राजनीतिज्ञ लोग उनके आदर्श बन गये हैं। नतीजन, अपनी संस्कृति के प्रतिमानों और उद्यमशीलता को भूलकर रातों-रात ग्लैमर की चकाचौंध में वे शीर्ष पर पहुँचना चाहते हैं। पर वे यह भूल जाते हैं कि जिस प्रकार एक हाथ से ताली नहीं बज सकती उसी प्रकार बिना उद्यम के कोई ठोस कार्य भी नहीं हो सकता। कभी देश की आजादी में युवाओं ने अहम् भूमिका निभाई और जरूरत पड़ने पर नेतृत्व भी किया। कभी स्वामी विवेकानन्द जैसे व्यक्तित्व ने युवा कर्मठता का ज्ञान दिया तो सन् 1977 में लोकनायक जयप्रकाश नारायण के आह्वान पर देश के युवा एक होकर सड़कों पर निकल आये पर आज वही युवा अपनी आन्तरिक शक्ति को भूलकर चन्द लोगों के हाथों का खिलौना बन गये हैं।

आज का युवा संक्रमण काल से गुजर रहा है। वह अपने बलबूते आगे तो बढ़ना चाहता है, पर परिस्थितियाँ और समाज उसका साथ नहीं देते। चाहे वह राजनीति हो, फिल्म व मीडिया जगत हो, शिक्षा हो, उच्च नेतृत्व हो- हर किसी ने उसे सुखद जीवन के सब्ज-बाग दिखाये और फिर उसको भँवर में छोड़ दिया। ऐसे में पीढ़ियों के बीच जनरेशन गैप भी बढ़ा है। समाज की कथनी-करनी में भी जमीन आसमान का अन्तर है। एक तरफ वह सभी को डिग्रीधारी देखना चाहता है, पर उन सभी हेतु रोजगार उपलब्ध नहीं करा पाता, नतीजन- निर्धनता, मँहगाई, भ्रष्टाचार इन सभी की मार सबसे पहले युवाओं पर पड़ती है। इसी

प्रकार व्यावहारिक जगत में आरक्षण, भ्रष्टाचार, स्वार्थ, भाई-भतीजावाद और कुर्सी लालसा जैसी चीजों ने युवा हृदय को झकझोर दिया है। जब वह देखता है कि योग्यता और ईमानदारी से कार्य सम्भव नहीं, तो कुण्ठाग्रस्त होकर गलत रास्तों पर चल पड़ता है। निश्चिततः ऐसे में ही समाज के दुश्मन उनकी भावनाओं को भड़काकर व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह के लिए प्रेरित करते हैं, फलतः अपराध और आतंकवाद का जन्म होता है। युवाओं को मताधिकार तो दे दिया गया है पर उच्च पदों पर पहुँचने और निर्णय लेने के उनके स्वप्न को दमित करके उनका इस्तेमाल नेताओं द्वारा सिर्फ अपने स्वार्थ में किया जा रहा है।

इंटरनेट और सोशल मीडिया के बढ़ते प्रभाव एवं विभिन्न गैजेट्स ने भी युवाओं की जीवन शैली और जीवन के प्रति समग्र रवैया में परिवर्तन किया है। मोबाइल फोन और सोशल मीडिया ने भले ही एक क्लिक पर दुनिया तक पहुँच आसान कर दी हो, पर युवा इसमें इतने तल्लीन रहते हैं कि वे यह भूल गए हैं कि इसके बाहर भी एक जीवन है। एक ही घर में बैठे पारिवारिक सदस्य एक दूसरे से रियल टाइम में नहीं बल्कि व्हाट्सएप के माध्यम से संवाद कर रहे हैं। फेक न्यूज और फॉरवर्डेड मैसेज के मकड़जाल में युवा इस बात का निर्णय ही नहीं कर पाते कि क्या सही या गलत है ? किताबों और पत्र-पत्रिकाओं की बजाय गूगल पर हर कुछ ढूंढने को तत्पर युवा वर्ग अपनी मौलिकता और शोधपरक सोच को कुंद करता नज़र आ रहा है। निश्चिततः इन सबका उसके भौतिक, मानसिक, पारिवारिक और सामाजिक जीवन पर भी गहरा असर पड़ रहा है।

भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाला देश है। आज हम व्यापक भूमंडलीकरण तथा गहन प्रतिस्पर्धा के कठिन दौर से गुजर रहे हैं। विज्ञान व प्रौद्योगिकी का तेज गति से विस्तार हो रहा है। यह क्षेत्र लगातार अंतर आयामी, बहुआयामी और बहुद्देशीय होता जा रहा है। भारत के पास उन बड़ी शक्तियों में शामिल होने की पूरी क्षमता है, जिनकी 21वीं सदी में प्रमुख भूमिका होगी। ऐसे में सारी दुनिया भारत की युवा शक्ति पर टकटकी लगाए हुए हैं। युवाओं ने आरम्भ से ही इस देश के आन्दोलनों में रचनात्मक भूमिका निभाई है- चाहे वह सामाजिक, शैक्षणिक, राजनैतिक या सांस्कृतिक हो। युवा व्यवहार मूलतः एक शैक्षणिक, सामाजिक, संरचनात्मक और मूल्यपरक समस्या है जिसके लिए राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक सभी कारक जिम्मेदार हैं। ऐसे में समाज के अन्य वर्गों को भी जिम्मेदारियों का अहसास होना चाहिए, सिर्फ युवाओं को दोष देने से कुछ नहीं होगा, क्योंकि सवाल सिर्फ युवा शक्ति के भविष्य का नहीं है, वरन् अपनी संस्कृति, सभ्यता, मूल्यों, कला एवम् ज्ञान की परम्पराओं को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखने का भी है।

पाला भी है और धूप भी
अद्भुत मगर मगन भी
निद्रा सुख में डूब कर
जवानी
जैसे चाबुक मार रही।
यादों के इंतजार सहारे
हृदय में छुपा कर टीसे
ढूँढ़ रही है घुप्प अन्धेरों में
सूखे पत्तों सी खँखार कर
जवानी
जैसे रेगिस्तान बनी।
आकुल-व्याकुल हो
चमकती रवि-किरणों सी
झाँक रही वातायन से
जवानी
धूमिल-धूसर मेघ सदृश।
जर्जर, टूटा हुआ कोलाहल ने
तुम्हें थकाया है या
मोटर की घूँ-घूँ ने ही
तुम्हें सिखाया है
हो स्वप्न जगत की मुक्त विचरना
जवानी
सूने यौवन की मधुशाला है

विकास तिवारी

कहानी

श्यामल बिहारी महतो

1

नूना मेरे पास काम की तलाश में आया था । अपने नये फार्म हाउस के लिए मुझे एक नौजव. ान नौकर की जरूरत थी । नूना को उसी काम के लिए बुलाया था मैने । पीडा में डूबी नूना की बातों ने मुझे झकझोर दिया था । वह अपनी आप बीती सुना नहीं जैस गिना रहा था –''कहां पता था बाबू, कि एक दिन हमें अपने ही राज्य में नौकरी के लिए दर दर की ठोकरे खानी पडेगी– भटकना पडेगा,पढते वक्त मन में कई तरह के सपने थे, अब सपने देखने से भी डर लगता है ।''

हल्की दाढी और कांतिहीन चेहरे वाले नूना की आंखों में मैने झांका । वह अपने इस जीवन पर जैसे रो रहा था –''साहब, आप तो काफी पढे लिखे लगते हो, पढा–लिखा तो मै भी हूं, फर्क सिर्फ इतना है कि आप हमारी कहानी सुन रहे है और मै आपको सुना रहा हूँ,, आप देख रहे है हमारे राज्य में कल कारखानों की कोई कमी नहीं है, रत्नगर्भा है हमारा राज्य ले. किन हमारे लिए ही इस राज्य में कोई काम, कोई नौकरी नहीं है, पांच साल पहले आइटीआइ से मैने वेल्डर का कोर्स पूरा किया, मां ने दिन रात मेहनत मजदूरी करके मुझे पढाया कि औधोगिक शहर होने के कारण नौकरी मिल जायेगी, ऐसी उम्मीद लगाकर वह अच्छे दिन की कामना करती रही, तीन चार बार साक्षात्कार दिया मैने, परन्तु पैरवी और पैसे के अभाव मे हर बार मै नौकरी से वचिंत रहा । पिता बचपन में ही मर चुके था, मां मेहनत मजदूरी करती तो घर का चूल्हा जलता था ऐसे में रिशवत के

लिए पचास साठ हजार रूपये कहां से लाता मै, घूस देकर बाहरी लोग हमारी जगह घूस जाते थे । क्रोध आता, नक्सली ज्वाइन करने का मन करता, उधर से कई बार बुलावा भी आ चुका था लेकिन कभी गया नही, मां का भयातुर चेहरा सामने आ खडा हो जाता, वह कंपकपाते होठ से कहती –''बेटा, उधर कभी मत जाना,मन बहुत घबराता है मेरा, उस जीवन से अच्छा है छोटा–मोटा मेहनत मजदूरी कर लो,कोई काम छोटा नहीं होता...।

नूना मूर्मू एक पल के लिए रूका था फिर चालू हो गया –''मेरा नक्सली न होने के पीछे मेरा वेल्डर मोह भी था, मन के किसी कोने में नौकरी मिल जायेगी,ऐसा विष्वास लिए बैठा हुआ था एक खास वजह और भी थी, प्रिया का प्यार !वह एक जीवन इवेंट था । एक बार साक्षात्कार के दौरान एक दिन कोयला भवन में प्रिया मिली थी । वह अपने माता पिता के साथ किसी काम से ऑफिस में आयी थीं, उनके माता पिता सुदामडीह पोखरिया खदान में मलकटा के काम करते थे, बाद में मैने भी सुदामडीह के एक प्राइवेट स्कूल में बच्चों को पढाने का काम पकड लिया, इस तरह प्रिया बाउरी के प्यार ने मेरे झुलसे मन को छांव दी,एक ठौर दिया, पर दिक्कत यह थी कि प्राइवेट स्कूल में तीन माह पढाओ तो एक माह का वेतन मिलता था, वह भी बहुत कम राशि , इस बीच हम दोनों ने शादी कर ली । उनके माता पिता नाराज हो गये । थाना फौदारी भी हुआ लेकिन प्रिया ने हमारा साथ नहीं छोडा । साल भर बाद प्रिया मेरे एक बच्चे की मां बनी, सोचा था कि शायद इसी बहाने ही सही हमारी तकदीर कोई करवट बदले, दरिद्रता मिटे लेकिन लंगडा से भंगडा नहीं होता । प्रिया के माता पिता नाराज ही रहे, नाती तक को दे खने नहीं आये, तकदीर के भरोसे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना मुझे मंजूर नहीं था । काम और दाम को लेकर इधर उधर भाग दौड करता रहा तभी लू लगने से एक दिन मां भी चल बसी ''!

नूना की आंखें भर आई थी–'' वह दो दिनों से भूखी थी, पापी पेट के लिए चिलचिलाती धूप में काम ढूंढने निकल पडी थी, मै भी काम की तलाश में बाहर भटक रहा था । जिस भूख ने मेरी मां को निगल लिया, उसी भूख के आगे बहुतों को सिद्धांत, राह, और न जाने क्या क्या बदलते हुए देखा है मैने, इसी भू ख के आगे औरतों

को धनपशुओं के आगे नंगें बदन नाचते देखा,उसकी नंगी जिस्म को नोचते देखा है'' धारा प्रवाह वह आगे कहता रहा ।–'' घर भी कहां था अपना, पोखरिया में जो था, वह माटी का एक टीला सा था एक रात बरसात में वह भी ढह गया था, मां मर चुकी थी, घर से बेघर हो चुका था और काम के सिलसिले में अब तक दर्जनों दरवाजे पीट चुका था, हार कर एक दिन प्रिया को उसके माता पिता के घर छोड आया और दूसरे दिन मुंबई जाने वा. ली टोली में खुद भी शामिल कर लिया । सुना था कि वहां आदम को उसकी योग्यता के बराबर काम मिल जाता है ''।

नूना खैनी खाने के लिए थोडी देर के लिए रूका था–'' क्या बताउं साहब ..'' उसने कहना फिर शुरू किया –'' मुंबई तो चला गया, मगर वहां जाने के बाद ऐसा लगा कि हम जैसों के लिए मुंबई है ही नहीं, किसी ने ठीक ही कहा है मुंबई में सब बिकाउ है, लोग कई तरह के सपने लेकर मुंबई शहर में पहुंचते हैं और न जाने किस भीड में खो जाते हैं, परन्तु मुझ जैसे लोगों के लिए मुंबई नही है, और तो जहां तहां ईंट–बालू में लग गये पर मेरा कहीं ठिकाना नहीं लगा , जो काम मिल रहा था वैसा काम तो मै छोडकर आया था, कई दिनों तक एक ढंग के काम की तलाश में भटकता रहा, भटकता रहा, परन्तु कहीं खप नही पाया,जेब मे जो पैसे थे वो कब का खत्म हो चुका था । दो दिनों से वीटी स्टेशन के बाहर पानी पीपी कर काम खोज रहा था ....। रेलगाडियां आती एक भीड निकलती और वे न जाने कहां कहां समा जाती, परन्तु मेरे लिए कोई खोली में जगह खाली नहीं थीा

काम की तलाश में मुंबई गये सैकडों युवायों की कहानियां सुन चुका था मैने, अब नूना की कहानी भी दिलचस्प मोड पर आ गया था । नूना आगे अलाप रहा था –''तीसरे दिन मेरे खाली पेट ने बगावत कर दिया । जोर का एक मरोड उठा, भूख सहा नहीं गया तो बगल के एक ढाबे में जा घूसा, पहले तो भर पेट खाना खाया । सप्ताह दिन बाद दाल भात नसीब हुआ था । सो जम कर खाया, अब जो हो सो हो, यह सोच थोडी देर तक वैसा ही बेंच पर बैठा रहा ,पास में पैसा था नही, देता कहां से ?

सप्ताह दिन तक होटल मालकिन के यहां बंधक रहा । फिर एक दिन चुसे आम की गुठली की तरह उसने मकान से बाहर फेंक दी । मैं फिर सडक पर आ गया । मै फिर इधर उधर भटकने लगा, एक दिन शाम को वी टी स्टेशन के बाहर दुबका सा बैठा था । यह सोच कर कि किसी मालगाडी में बैठ अपने गांव लौट जाउं,वहीं कुछ

कमाने की सोचूंगा, अभी मैं इसी पर सोच रहा था कि स्टेशन के बाहर एक जोरदार बम धमाका हुआ । फिर तो वहां देखते ही देखते चीख–पुकार , और अफरा–तफरी मच गई । लोग इधर से उधर भागने लगे थे । पुलिस घटना स्थल पर पहुंच चुकी थी । मै एक मालगाडी की तरफ भागा, तभी कोमल दो हाथों ने अपनी ओर खींच लिया था मुझे । वह एक धंधे वाली औरत थी । स्टेशन के बाहर खडी मालगाडियों के डिब्बों में वह अपना धंधा करती थी छिप –छिप कर ! ''

नूना का भाव भंगिमा बेहद गंभीर हो गया था–'' साहब, जीवन के कितने रंग, कितने रूप होते ह, '' यह मैने तभी जाना था, वैसे हम दोनों के जीवन में कोई ज्यादा फर्क नहीं था । उसके अंदर का नारीत्व मरा नहीं था, ममता इतनी मैली भी नहीं होती है । उसने मुझे उस मालगाडी के चालक से मिलवा कर साथ बिठवा दिया, मना करने के बावजूद कुछ पैसे उसने मेरी जेब में ठूंस दी – '' सीधे अब घर चले जाना । '' भींगी पलको को पोछते हुए उसने कहा था ।

'' यहां काम क्या करना है, मालूम है तुम्हे–'' अचानक मैने नूना से पूछ लिया था,नूना पहले जोर से हंसा जैसे अपने तकदीर पर हंस रहा हो , फिर बोला –'' साहब, उस होटलवा. ली मालकनि के कराये काम से, बुरा तो नहीं होगा'' बोलते बोलते वह रूक गया था ।

थोडी देर बाद हम फार्म हाउस के बाहर खडे थे । सामने पहुंच कर नूना ने अपने मटमैले बेग को जमीन पर रखा और कुछ इस तरह बैठ गया था जैसे पैरों को लकवा मार दिया हो । वह सामने लगे बोर्ड को पढ रहा था और सोच रहा था कि क्या इसी दिन को देखने के लिए वेल्डर का सर्टिफिकेट को बचा रखा था, यहां किसका वेल्डींग करूंगा? जीवन का, जमीर का या फिर तकदीर का ? बोर्ड पर साफ लिखा था –''सूअर पालन घर । ''

समाप्त ।।

लघुकथा : विजय कुमार

सही मूल्यांकन

फेसबुक खोलकर राजेश एक साहित्य ग्रुप में डाली गई पोस्टों को देखने-पढ़ने लगा। आज भी एक लेखिका द्वारा अपनी एक रचना के किसी अन्य द्वारा अपने नाम से पोस्ट किए जाने पर आपत्ति दर्ज करते हुए उस पर चर्चा-परिचर्चा की जा रही थी। ग्रुप से जुड़े लगभग सभी रचनाकार या पाठक वर्ग इस कृत्य की निंदा कर रहे थे, जो सही भी था। किसी भी रचनाकार के साथ यह अन्याय ही था।

...परंतु राजेश सोच रहा था, 'क्या जरूरत है अपनी नवीनतम रचना को इस तरह फेसबुक या व्हाट्सएप्प पर डालने की? पता नहीं क्यों, सभी को वाहवाही लूटने की इतनी जल्दी रहती है कि इधर कोई कविता, लघुकथा या अन्य रचना लिखी नहीं, उधर तुरंत पोस्ट कर दी। कई तो लगता है कि सीधे लिखते ही फेसबुक या व्हाट्सएप्प पर ही हैं। कई बार तो कितनी अशुद्धियाँ होती हैं, और रचना भी अधपकी-सी होती है। फिर सिलसिला शुरू हो जाता है वाहवाही का। अगर कोई गलती से रचना के खिलाफ कोई टिप्पणी कर दे, तो सभी उस बेचारे टिप्पणी करने वाले की हालत खराब करके रख देते हैं। यदि कोई रचना अच्छी हो, तो तुरंत चोरी हो जाती है। बस फिर कोसते रहो। क्या फेसबुक या व्हाट्सएप्प पर किसी रचना का सही मूल्यांकन हो पाता है?'

सोचते-सोचते उसने अपना ईमेल अकाउंट खोला और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं को अपनी रचनाएं पोस्ट करने में व्यस्त हो गया...।

113वीं जयंती पर 'नज़ीर बनारसी यादों के आईने में' पुस्तक का विमोचन

नज़ीर 'बनारसी' की शायरी व कविताएँ आगामी पीढ़ियों के लिए धरोहर - पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव

गंगा-जमुनी तहजीब और बनारसी मिजाज के मशहूर शायर नज़ीर 'बनारसी' की 113वीं जयंती के उपलक्ष्य में नज़ीर बनारसी एकेडमी और डॉ. अमृत लाल इशरत मेमोरियल सोसाइटी के संयुक्त तत्वाधान में नागरी नाटक मंडली, वाराणसी में आयोजित समारोह में 'नज़ीर बनारसी यादों के आईने में' पुस्तक का विमोचन संकट मोचन मंदिर के महंत प्रो. विश्वम्भरनाथ मिश्र, मुख्य अतिथि पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव और गणमान्य अतिथियों द्वारा किया गया।

अध्यक्षता करते हुए संकट मोचन मंदिर, वाराणसी के महंत प्रो. विश्वम्भरनाथ मिश्र ने कहा कि नज़ीर 'बनारसी' बेनजीर थे। वे काशी के फकीर थे। उन्होंने बनारस की रूह को समझा इसलिए इस शहर ने उन्हें स्वीकार किया। नज़ीर 'बनारसी' ने बनारसीपन को निभाया। अपनी शायरी में भी गंगा को जिया। अपनी रचनाओं के माध्यम से वे सदैव जिंदा रहेंगे।

मुख्य अतिथि वाराणसी परिक्षेत्र के पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने कहा कि नज़ीर 'बनारसी' की सबसे बड़ी ख़ूबी उनकी भाषा की जन-सम्प्रेषणीयता है। मुहब्बत, भाईचारा, देशप्रेम उनकी शायरी और कविताओं की धड़कन है। नज़ीर 'बनारसी' की शायरी और उनकी कविताएँ आगामी पीढ़ियों के लिए धरोहर हैं। इससे युवाओं को जोड़ने की जरुरत है। अगर हम इस मुल्क और उसके मिज़ाज को समझना चाहते हैं, तो नज़ीर 'बनारसी' को जानना और समझना होगा।

मुफ़्ती-ए-बनारस मौलाना अब्दुल बातिन नोमानी ने कहा कि मोहब्बत के नाजुक एहसासों और जरूरतों को नज़ीर 'बनारसी' ने बड़े सलीके से शायरी और गजलों की शक्ल दी। वे मजहबी एकता कायम करने के फनकार थे। बीएचयू उर्दू विभाग के अध्यक्ष प्रो. आफताब अहमद आफाकी ने बीएचयू में अमृत लाल इशरत और नज़ीर 'बनारसी' के नाम पर गोल्ड मेडल की शुरुआत करने की जरूरत बताई। प्रख़्यात शायर डॉ. माजिद देवबंदी ने कहा कि हम बच्चों को आधुनिक तालीम तो दें लेकिन हिंदी और उर्दू ज़ुबान भी पढ़ाएं। डॉ. अमृत लाल इशरत मेमोरियल के अध्यक्ष दीपक मधोक ने नज़ीर 'बनारसी' और अपने पिता अमृतलाल इशरत का संस्मरण सुनाया। प्रसिद्ध गीतकार डॉ. बुद्धिनाथ मिश्र ने नज़ीर 'बनारसी' की रचनाधर्मिता पर प्रकाश डालते हुए उनसे जुड़े प्रसंगों को साझा किया। नज़ीर बनारसी एकेडमी के अध्यक्ष मो. सगीर ने बताया कि नज़ीर 'बनारसी' की प्रमुख किताबों में गंगो जमन, जवाहिर से लाल तक, ग़ुलामी से आज़ादी तक, चेतना के स्वर, किताबे ग़ज़ल, राष्ट्र की अमानत राष्ट्र के हवाले, कौसरो ज़मज़म शामिल हैं। लाल बहादुर शास्त्री अंतरराष्ट्रीय एयरपोर्ट निदेशक आर्यमा सान्याल ने जीवन में उत्सव नामक अपनी रचना सुनाई। स्वागत अकादमी के अध्यक्ष मो. सगीर, संचालन इशरत उस्मानी और धन्यवाद रेयाज अहमद ने किया।

मो. सगीर
अध्यक्ष - नज़ीर बनारसी एकेडमी, वाराणसी

शिवानंद सिंह सहयोगी

क्या हुआ है ?

क्या हुआ है ?
छोड़ अपना गाँव 'जिउता'
शहर में ही रह रहा है |

अभी मन में, कुआँ-जोहड़,
खेत हैं, खलियान भी हैं,
वह फटी लुंगी पुरानी,
चीलरी बनियान भी हैं,
क्या हुआ है ?
पोखरों की गंदगी को,
बहुत कसकर गह रहा है |

सेमरी, मँगरी, जनकिया,
गाँव में ही मर रही हैं,
झाड़-झूड़न और बरतन,
काम सारे कर रही हैं,
क्या हुआ है ?
समय है बलवान, लेकिन
कष्ट सारे सह रहा है |

नीम का वह पेड़ हरियल
और बरगद की हवा नम,
है नहीं शहरी प्रदूषण
साँस में है आज भी दम,
क्या हुआ है ?
एक वैज्ञानिक अपरिचित
प्रकृति-कंबल तह रहा है |

लघुकथा

काली

शाम घिर आई थी। सूरज डूबने लगा था। रोज की तरह थके - हारे कदमों से दीनू खेत से घर की तरफ लौट रहा था लेकिन आज उसके कदम इतने बोझिल थे कि उठाए नहीं उठ रहे थे। बेबस और लाचार दीनू जैसे तैसे घर पहुँचा और निढाल हो कर टूटी चारपाई पर पड़ गया।

"अरे बाबा क्या हुआ ? आप ठीक तो हो ना, आपकी तबियत ठीक नहीं क्या?" काली अपने पिता की ऐसी दशा देख कर चिंतित हो उठी।

बेटी की आवाज़ सुनकर उपले थापती परबतिया दौड़ कर आई। पति को यूँ निढाल देख कर वो भी चिंता में पड़ गई और रुआंसी होती हुई दीनू से पूछने लगी ,"काली के बापू क्या हुआ, कुछ बताओ तो सही।"

चारपाई पर पड़े पड़े ही दीनू बोल पड़ा....

"बहुत बड़ी विपदा आन पड़ी काली की माँ! हमारा एक बैल मर गया। अब सिंचाई बुआई कैसे करूँगा। कुँए का पानी भी इतना नीचे चला गया है कि चड़स के बिना निकालना संभव ही नहीं। काश हमारे गाँव में भी बिजली होती।"

और दीनू की आँखों से आँसुओं का रेला बह निकला । पति को रोते देख परबतिया भी रोने लगी। तभी काली बोल उठी....

"तो बापू हमारे गाँव में बिजली क्यूँ नहीं है। स्कूल में टीचर बता रही थी हमारे देश की आजादी को पचहत्तर साल हो गए। सरकार हर गांव में बिजली पहुँचा रही है।"

"अरे बेटा ! पूरे गाँव के लोग सैंकड़ों चक्कर काट चुके। पंच सरपंच सब मिलकर विधायक और मंत्री तक से गुहार लगा चुके लेकिन ये कह कर मना कर देते हैं कि तुम्हारा गाँव ऊँचे ऊँचे टीलों और पहाड़ियों के बीच बसा हुआ है। इसलिए ऐसे दुर्गम इलाके में बिजली के खम्बे नहीं लग सकते।"

"अरे दीनू भाई! खटका दबाओ ना! सब इंतजार कर रहे हैं।"

सरपंच जी की ऊँची आवाज़ से दीनू की तंत्रा टूटी। और काली बोल उठी ...

"आप कहाँ खो गए बाबा? मुझे मालूम है आप क्या सोचने लगे। याद है आपको जिस दिन अपना बैल मर गया था और आप घर आ कर निढाल पड़ गए थे। साथ ही आपने बताया कि हमारे गाँव में बिजली कभी नहीं आ सकती है। तब दूसरे ही दिन मैंने स्कूल में टीचर जी से बात की तो उन्होंने बताया कि काली जिन दुर्गम इलाकों में बिजली नहीं पहुँच सकती वहाँ सरकार सोलर एनर्जी द्वारा बिजली देने का प्रयास कर रही है । तुम चाहो तो छह महीने की ट्रेनिंग लेकर अपने गाँव में भी बिजली ला सकती हो। और बाबा देखिए मैं बिजली ले आई हूँ। आप खटका तो दबाओ ।" तालियों की गड़गड़ाहट के साथ जैसे ही दीनू ने खटका दबाया पूरा गाँव रोशन हो उठा।

बरबस ही दीनू के मुंह से निकल पड़ा .... "बेटा भले ही तेरा नाम काली है लेकिन तूने पूरे गाँव को उजाला दिया है।"□

अरुण धर्मावत

आशा पाण्डेय ओझा की ग़ज़लें

ग़ज़ल– 1

आँगन भूखी शाम खड़ी है
बाँधे साँस तमाम खड़ी है

कच्ची बस्ती में ये आफ़त
घेर हरेक मक़ाम खड़ी है

थोड़ा रस्ता छोड़ो यारो
ख़ुशी यहाँ पर जाम खड़ी है

आहें घर-घर आकर पसरी
चौक, तिबारी, बाम खड़ी है

रोज़ समाने को धरती में
घर-घर सीता, राम! खड़ी है

नन्हीं बच्ची सौदागर से
लेकर अपने दाम खड़ी है

रूप बदल कर अगली पीड़ा
जाने किसके नाम खड़ी है

पेट भराई ख़ातिर केवल
इक बस्ती बदनाम खड़ी है

हक़ जीने का दो इनको भी
'आशा' ले पैगाम खड़ी है

ग़ज़ल– 2

याद की और ख़्वाब की बातें
हर घड़ी बस जनाब की बातें

ये नये लोग, सोच भी ताज़ा
हैं पुरानी हिजाब की बातें

प्यार के दर्मियाँ लगी होने
देखिये अब हिसाब की बातें

गंध बारूद की उड़ी इतनी
गुम हुई हैं गुलाब की बातें

पढ़ लिया भी करो कभी मन को
सिर्फ़ पढ़ते किताब की बातें

आज हँस लें चलो ज़रा मिलकर
फिर सुनेंगे अज़ाब की बातें

सूख जाएँगे जब नदी-सागर
याद आएँगी आब की बातें

लोग सीधे सरल बड़े हम तो
क्या पता बारयाब की बातें

दर्द, बेचैनियाँ कहें किससे
और ये ख़ूँ-ख़राब की बातें

अब मुहब्बत है गुमशुदा 'आशा'
हर तरफ़ है इताब की बातें

ग़ज़ल– 3

प्यार सदा अनमोल रहा है
रस दुनिया में घोल रहा है

उसकी आँखे तोल रहा है
अपना दिल भी खोल रहा है

धीरे-धीरे जाने क्या वो
कानों में कुछ बोल रहा है

जिसकी यादों से नम आँखें
रिश्ता वो अनमोल रहा है

क्यूँ मानें हम उनकी बातें
बातों में जब झोल रहा है

लाख दिखावा भारीपन का
थोथा फिर भी ढोल रहा है

आंधी तूफां से टकरा कर
पंछी फिर पर खोल रहा है

ग़ज़ल– 4

ज़िंदगी में कहीं, ज़िंदगी तो मिले
ढूंढने जब चलूं, इक ख़ुशी तो मिले

सूरतें आदमी सी मिली हर तरफ़
काश!इनमें कभी आदमी तो मिले

भूलसे हम गये शक़्ल तक इन दिनों
काश! फिर से कहीं सादगी तो मिले

पाँव तक टोकने लग गये हैं हमें,
दौड़ने की वज़ह लाज़िमी तो मिले

जो लबों पर चढ़े, और उतरे नहीं
काश!ऐसी कहीं शायरी तो मिले

ढूँढ़ लेंगे सराबों में दरिया कई,
इस क़दर पर कोई तिश्नगी तो मिले

हर्फ़ जलने लगे,सोच मुरझा गई
मन जमीं को ज़रा ताज़गी तो मिले

आज तक लड़ रही है अंधेरों से जो
उस अमा को ज़रा रोशनी तो मिले।

जो शिकायत करूँ सूखे दरिया की मैं
मेरी आँखों में भी कुछ नमी तो मिले

छोड़ दूं मैं भटकना गली दर गली
'आशा' वो इक पता आख़िरी तो मिले

हाई टेक देहाती माँ

कहने को शहर में आ कर
हाई टेक बन जाती माँ
अब भी भिनसार ही उठती
ये हाई टेक देहाती माँ

भोर होते सबसे पहले
अब भी माँ ही उठती है
बिन शोर घर संवारने को
फिर चुपचाप ये जुटती है
फैले पड़े कमरों के कपड़े
एक एक कर उठाती है
नहीं घाट पर जाती अब
पर वाशिंग मशीन चलाती है
फैले जूते इधर उधर
शू रैक में जमा देती
पड़ी किताबें यहाँ वहाँ
बस्तों में है समा देती
उठ के अल सुबह सबके
कमरों में झाँक के आती माँ
अब भी भिनसार ही उठती
ये हाई टेक देहाती माँ
अब नहीं पीसती चक्की आटा
उठकर ये जल्दी मुंह अंधेरे
जल्दी जागकर अब भी बनाती
सबके टिफिन सुबह सवेरे
अब भी मुर्गे की बांग सी
दे देकर सबको जगाती है
आलस जो करे कोई
तो दो चपत भी जमाती है
चाहे बनी है शहरी मम्मी
अपने फर्ज़ निभाती माँ
अब भी भिनसार ही उठती
ये हाई टेक देहाती माँ
कर देती तय सुबह सुबह ही
सबकी दिनचर्या को जैसे
क्या खाया जायेगा आज
कौन कब जायेगा कैसे
माना अब वो सुबह सवेरे
चूल्हा नहीं जलाती है
गैस, इंडक्शन, माइक्रोवेव में
खाना अब भी बनाती है
कभी न बदली ममता इसकी
ऐसी दुर्लभ प्रजाति माँ
अब भी भिनसार ही उठती
ये हाई टेक देहाती माँ

तृप्ति मिश्रा

केशव शरण

प्यार के क़रिश्मे

दशरथ माँझी के लिए
आसान था
पहाड़ काट देना
और रास्ता बना लेना
मीर के लिए
शुरुआत ही मुश्किल-भरी थी

दशरथ माँझी को प्यार
फूल के रूप में मिला था
और मीर के लिए पत्थर की शक़्ल में
इश्क़ इतना भारी रहा
कि हिलाये नहीं हिला था

मीर ने कोई कोह नहीं काटा
लेकिन एक नायाब गुलशन बनाया
शायरी के फूलों का

खिड़की

यहां से केवल
हवा ही नहीं आती
उजाला ही नहीं आता
उड़ती हुई चिड़िया ही नहीं आती
सड़क के दृश्य ही नहीं आते
पेड़ के पत्ते ही नहीं आते
पहाड की चोटी ही नही
बरसात की फुहार भी आती है
जो चेहरे पर पडकर
भीगोती है भीतर तक
आता है धूप का चकत्ता भी
जो पीठ की जगह के बिस्तर पर
ठहरता है थोड़ी देर
जैसे रख छोडी हो आयरन
और मैं अपनी पीठ पर महसूसता हूं
कुनकुने पानी में निचोड़े गए
टॉवेल का ताप।

मुझ
अकेले वृद्ध के लिए
यह ताप ही
दिन भर की
ऊर्जा है।

राजेन्द्र ओझा

संपर्क भाषा भारती

साहित्य-समाज को समर्पित राष्ट्रीय मासिकी, अक्तूबर—2022, RNI-50756

दस पुस्तकें जिनका लोकार्पण बसंत पंचमी, 26 जनवरी-2023 को तय है :

1. पुरुष व्यथा कथा : 2022
2. नारी व्यथा कथा : 2022
3. तीसरा पहलू : किन्नर कथा 2022
4. हिन्दी के श्रेष्ठ ग़ज़लकार : 2022
5. श्रेष्ठ कवयित्रियाँ : 2022
6. उत्कृष्ट कहानियाँ : 2022
7. उत्कृष्ट बाल कहानियाँ : 2022
8. श्रेष्ठ व्यंग्यकार : 2022
9. श्रेष्ठ लघुकथाकार : 2022
10. श्रेष्ठ महिला लघुकथाकार : 2022

1. पुस्तकों का प्रकाशन आंशिक लेखकीय सहयोग द्वारा प्रस्तावित है।
2. लघुकथा पुस्तक में एक रचनाकर के छः पृष्ठ निर्धारित होंगे।
3. कविता और ग़ज़ल पुस्तक में भी लेखक को छः पृष्ठ दिए जाएंगे।
4. रचनाओं को संपादक द्वारा चयनित किया जाएगा।
5. पुस्तक प्रकाशनोपरांत दो लेखकीय प्रतियाँ लेखक को प्रदान की जाएंगी।
6. पूर्व अनुरोध पर लेखकों को अधिक प्रतियाँ प्रकाशित मूल्य से 30% कम मूल्य पर दी जाएंगी।
7. लेखक को अपनी रचना का दो बार प्रूफ शोधन, प्रूफ प्राप्त होने के 7 दिन के अंदर करना होगा।
8. रचनाएँ मंगल अथवा यूनिकोड फॉन्ट में ही टाइप करके भेजी जाएँ।
9. रचनाकार, पासपोर्ट फोटो सहित अधिकतम 150 शब्दों में संक्षिप्त परिचय भेजें।
10. सभी पुस्तकों का प्री-प्रिंटिंग प्रोसेस 31 दिसंबर तक पूरा करने का लक्ष्य है।
11. रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेजी जाएंगी तो उनका प्रूफ शोधन जल्दी हो सकेगा।
12. अशुद्धियों से बचना प्रकाशन का प्रमुख लक्ष्य रहेगा।
13. पुस्तकों का लोकार्पण नई दिल्ली में ही प्रस्तावित है।

प्रकाशन सहयोग : saubhagyapublication@gmail.com

सहयोग 60/-